खण्ड VIII
पुस्तक सं. 5

16.5.1949
से
16.6.1949

भारतीय संविधान सभा

के

वाद-विवाद

की

सरकारी रिपोर्ट

(हिन्दी संस्करण)

लोक सभा सचिवालय, नई दिल्ली द्वारा पुनर्मुद्रित

द्वितीय पुनर्मुद्रण 2015

जैनको आर्ट इण्डिया, सरस्वती मार्ग, करोल बाग, नई दिल्ली द्वारा मुद्रित

भारतीय संविधान सभा

अध्यक्ष

माननीय डॉ. राजेन्द्र प्रसाद

उपाध्यक्ष

डॉ. एच.सी. मुखर्जी

संवैधानिक सलाहकार

सर बी.एन. राव, *सी.आई.ई.*

सचिव

श्री एच.वी.आर. आयंगर, *सी.आई.ई., आई.सी.एस.*

संयुक्त सचिव

श्री एस.एन. मुखर्जी

उप सचिव

श्री जुगल किशोर खन्ना

मार्शल

सूबेदार मेजर हरबन्स राय जैदका

Con. 4. VIII.1.40
250

अंक 8
संख्या 1

सोमवार
16 मई
सन् 1948 ई.

भारतीय विधान-परिषद्

के

वाद-विवाद

की

सरकारी रिपोर्ट

(हिन्दी संस्करण)

विषय-सूची

पृष्ठ

प्रतिज्ञा ग्रहण और रजिस्टर पर हस्ताक्षर 1
श्रीमती सरोजिनी नायडू की मृत्यु पर संवेदना 1
परिषद की कार्यवाही का कार्यक्रम 2
राष्ट्रमण्डल की सदस्यता सम्बन्धी निर्णय के अनुसमर्थन के बारे में प्रस्ताव 3-60

भारतीय विधान-परिषद्

सोमवार, 16 मई, 1949

भारतीय विधान-परिषद् कांस्टीट्यूशन हाल, नई दिल्ली, में प्रातः दस बजे अध्यक्ष महोदय (माननीय डा. राजेन्द्र प्रसाद) के सभापतित्व में समवेत हुई।

प्रतिज्ञा ग्रहण और रजिस्टर पर हस्ताक्षर

निम्नलिखित सदस्यों ने प्रतिज्ञा ग्रहण की और रजिस्टर पर हस्ताक्षर किये:–

(1) माननीय श्री बिनोदानन्द झा (बिहार : जनरल)।

(2) सरदार सुचेत सिंह (पटियाला और पूर्वी पंजाब राज्य)।

(3) श्री काका भगवंत राय (पटियाला और पूर्वी पंजाब राज्य)।

श्रीमती सरोजिनी नायडू की मृत्यु पर संवेदना

***अध्यक्ष:** माननीय सदस्यगण, श्रीमती सरोजिनी देवी के स्वर्गवास हो जाने के बाद हम इस सभा में पहली बार मिल रहे हैं। उनका जीवन देश की सेवा में समर्पित रहा था और हम जिस महान संघर्ष में से गुजरे उसमें वह जिस तरह दृढ़ रहीं वह अपने आप में एक उदाहरण है। वह वर्तमान भारत के निर्माताओं में से एक रहीं थी और उनकी मृत्यु से देश को जो हानि हुई है उसकी आसानी से पूर्ति नहीं की जा सकती है। मैं चाहता हूं कि सदस्य अपने-अपने स्थान पर एक क्षण के लिए खड़े होकर उनकी स्मृति के प्रति सम्मान प्रदर्शित करें।

(सभी सदस्य मौन खड़े हुए।)

---

*इस चिह्न का अर्थ है कि यह अंग्रेजी वक्तृता का हिन्दी रूपान्तर है।

परिषद् की कार्यवाही का कार्यक्रम

***अध्यक्ष:** कार्यसूची की मदों को लेने से पूर्व मैं इस अधिवेशन के कार्यक्रम के सम्बन्ध में कुछ प्रारम्भिक टिप्पणियां करना चाहता हूं।

माननीय सदस्यों को याद होगा कि पिछले अधिवेशन में इस संविधान के प्रारूप के 67वें अनुच्छेद तक निबटा सके थे। अनुच्छेद 67 से पहले के चार अनुच्छेद बाद में विचार करने के लिए छोड़ दिये गये थे। चुनावों के संबंध में दो अन्य अनुच्छेदों को हमने निबटा दिया था। विधान-परिषद् की संचालन समिति की बैठक हाल में हुई थी और उसने निर्णय किया था कि हमें उन अन्य अनुच्छेदों को पहले लेना चाहिए जो चुनावों से सम्बन्धित हैं ताकि आगामी चुनावों के लिए तैयारी बिना व्यवधान के होती रहे। अत: मैं उन अनुच्छेदों को लेना चाहता हूं; मैं समझता हूं कि उनकी सूची माननीय सदस्यों को दे दी गई है।

इस अधिवेशन में हमें अभी बहुत काम निबटाना है। संविधान के 315 अनुच्छेदों में से हम अब तक केवल 65 अनुच्छेद निबटा पाये हैं और इनके अतिरिक्त आठ अनुसूचियां भी हैं। अत: हमें जितनी जल्दी हो सके काम निबटाना होगा। मैं यह नहीं चाहता कि जहां कहीं विचार करना आवश्यक समझा जाये वहां और अत्यन्त महत्त्वपूर्ण प्रश्नों पर चर्चा में किसी प्रकार की कटौती की जाये। परन्तु मैं आशा करूंगा कि सदस्य अपने विचार महत्वपूर्ण बातों तक ही सीमित रखेंगे और बातों को दोहरायेंगे नहीं। यदि हम व्यावहारिक तरीके से चलते हैं तो मुझे आशा है कि हम यह काम आगामी 15 अगस्त को अपनी स्वतंत्रता की वर्षगांठ से पहले पूरा कर सकेंगे। मैं प्रयास करूंगा कि यह काम उस दिन से पहले पूरा हो जाये।

इस अधिवेशन के दौरान बैठक के समय के विषय में एक प्रश्न उठाया गया है। मुझे दो सुझाव दिये गये हैं: एक यह है कि हमें प्रात:काल बैठना चाहिए और दूसरा यह कि हमें दोपहर बाद बैठना चाहिए। इसका निर्णय सदन को करना है। इसमें मेरी व्यक्तिगत इच्छा कुछ नहीं है। जो भी निर्णय सदन करेगा मैं उसे स्वीकार करूंगा। हम प्रतिदिन लगभग चार घण्टे तक बैठेंगे। यदि हम प्रात:काल बैठते हैं तो समय प्रात: 8 बजे से दोपहर 15 बजे तक होगा और यदि हम दोपहर बाद बैठते हैं तो समय साढ़े तीन बजे से साढ़े सात बजे तक होगा। माननीय सदस्यों के विचार जानने के पश्चात् मैं आज की कार्यवाही के अन्त में बैठक के समय की घोषणा करूंगा।

अब हम कार्य-सूची को लेते हैं। पहली मद वह संकल्प हैं जिसकी सूचना माननीय पंडित जवाहर लाल नेहरू द्वारा दी गई है।

सेठ गोविन्द दास (मध्य प्रान्त और बरार : जनरल): अध्यक्ष महोदय, इससे पहले कि आप आज अन्तिम अधिवेशन की कार्यवाही शुरू करें, मैं आपको याद दिलाना चाहूंगा कि आपने इससे पहले क्या कहा है और यह पूछना चाहूंगा कि आप इस सिलसिले में क्या करने जा रहे हैं, क्योंकि उसका यही एक अवसर है।

***अध्यक्ष:** मैं समझता हूं कि यह प्रश्न इस समय उत्पन्न नहीं होता। जब समय आयेगा हम इस पर विचार करेंगे।

राष्ट्रमण्डल की सदस्यता सम्बन्धी निर्णय के अनुसमर्थन के बारे में प्रस्ताव

***माननीय श्री जवाहरलाल नेहरू** (संयुक्तप्रान्त : जनरल): अध्यक्ष महोदय, मैं निम्नलिखित प्रस्ताव पेश करता हूं:

> ''Resolved, that this Assembly do hereby ratify the declaration, agreed to by the Prime Minister of India, on the continued membership of India in the Commonwealth of Nations, as set out in the official statement issued at the conclusion of the Conference of the Commonwealth Prime Ministers in London on April 27, 1949.''
>
> ''यह निश्चय किया जाता है कि यह सभा भारत के राष्ट्रमण्डल का सदस्य बने रहने के बारे में उस घोषणा का अनुसमर्थन करती है जिसके लिए भारत के प्रधानमंत्री सहमत हुए थे और जिसका उल्लेख उस सरकारी बयान में किया गया था जो 27 अप्रैल, 1949 को राष्ट्रमण्डल के प्रधान मंत्रियों के सम्मेलन के समाप्त होने पर निकाला गया था।''

सभा माननीय सदस्यों को इस घोषणा की प्रतियां दे दी गई हैं, इसलिए मैं इसे फिर से नहीं पढ़ूंगा। मैं इस घोषणा की कुछ मुख्य बातें ही संक्षेप में बताऊंगा। यह चार पैराग्राफों का छोटा सा और साधारण सा दस्तावेज है। आप देखेंगे कि पहला पैराग्राफ वर्तमान कानूनी स्थिति के बारे में है। इसमें ब्रिटिश राष्ट्रमण्डल का और इस बात का जिक्र है कि इस राष्ट्रमण्डल के लोग साझे तौर पर ''क्राउन'' के प्रति निष्ठावान हैं। वर्तमान कानूनी स्थिति यह है।

''The Governments of the United Kingdom, Canada, Australia, New Zealand, South Africa, India, Pakistan and Ceylon, whose countries are united as Members of the British Commonwealth of Nations and owe a common allegiance to the Crown which is also the symbol of their free association, have considered the impending constitutional changes in India.

[माननीय श्री जवाहरलाल नेहरू]

The Government of India have informed the other Governments of the Commonwealth of the intention of the Indian people that under the new Constitution which is about to be adopted India shall become a sovereign independent Republic. The Government of India have, however, declared and affirmed India's desire to continue her full membership of the Commonwealth of Nations and her acceptance of the King as the symbol of the free association of its independent member nations and as such as the Head of the Commonwealth.

The Governments of the other countries of the Commonwealth, the basis of whose membership of the Commonwealth is not hereby changed, accept and recognise India's continuing membership in accordance with the terms of this Declaration.

Accordingly, the United Kingdom, Canada, Australia, New Zealand, South Africa, India, Pakistan and Ceylon hereby declare that they remain united as free and equal members of the Commonwealth of Nations, freely co-operating in the pursuit of peace, liberty and progress.''

[''यूनाइटेड किंगडम, कनाडा, आस्ट्रेलिया, न्यूजीलैंड, दक्षिण अफ्रीका, भारत, पाकिस्तान और लंका की सरकारों ने, जिनके देश ब्रिटिश राष्ट्रमण्डल के सदस्यों के रूप में संगठित हुए हैं और ''क्राउन'' के प्रति, जो उनके स्वतंत्र साहचर्य का प्रतीक भी हैं, समान रूप से निष्ठावान हैं, भारत में निकट भविष्य में होने वाले संवैधानिक परिवर्तनों पर विचार किया है।

भारत सरकार ने राष्ट्रमंडल की अन्य सरकारों को भारतीय जनता के इस इरादे से अवगत करा दिया है कि निकट भविष्य में स्वीकृत किये जाने वाले नये संविधान के अन्तर्गत भारत एक प्रभुसत्ता सम्पन्न स्वतंत्र गणराज्य का रूप ले लेगा। तथापि, भारत सरकार ने भारत की इस इच्छा की घोषणा एवं पुष्टि की है कि वह राष्ट्रमंडल का पूर्ण सदस्य बना रहेगा और इसके स्वाधीन सदस्य राष्ट्रों के स्वतंत्र साहचर्य के प्रतीक के रूप में और इस प्रकार राष्ट्रमण्डल के प्रमुख के रूप में 'सम्राट' को मान्यता देता रहेगा।

राष्ट्रमण्डल के अन्य देशों की सरकारें, जिनकी राष्ट्रमण्डल की सदस्यता के आधार में एतद्द्वारा कोई परिवर्तन नहीं आता, इस घोषणा की शर्तों के अनुसार भारत के सदस्य बने रहने को स्वीकार करती है और इसे मान्यता देती है।

तदनुसार यूनाइटेड किंगडम, कनाडा, आस्ट्रेलिया, न्यूजीलैंड, दक्षिण अफ्रीका, भारत, पाकिस्तान और लंका एतद्द्वारा घोषणा करते हैं कि वे राष्ट्रमण्डल के स्वाधीन और समान सदस्यों के रूप में संगठित बने रहेंगे और शांति, स्वतंत्रता और प्रगति के उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए निर्बाध रूप से सहयोग करते रहेंगे।'']

इस घोषणा के अगले पैराग्राफ में बताया गया है कि भारत सरकार ने राष्ट्रमण्डल के अन्य देशों की सरकारों को बता दिया है कि भारत शीघ्र ही एक प्रभुसत्ता सम्पन्न स्वतंत्र गणराज्य बनने जा रहा है और यह कि वह राष्ट्रमण्डल का पूर्ण सदस्य बने रहने का इच्छुक है और 'सम्राट' को स्वतंत्र साहचर्य के प्रतीक के रूप में मानता है, इत्यादि।

तीसरे पैराग्राफ में कहा गया है कि राष्ट्रमण्डल के अन्य देश इस स्थिति को स्वीकारते हैं और चौथे पैराग्राफ के अन्त में कहा गया है कि ये सब देश राष्ट्रमण्डल के स्वाधीन और समान सदस्यों के रूप में संगठित हैं। आप देखेंगे कि इसे पहले पैराग्राफ में तो ब्रिटिश राष्ट्रमण्डल कहा गया है जबकि बाद के पैराग्राफों में केवल राष्ट्रमण्डल कहा गया है। फिर आप देखेंगे कि पहले पैराग्राफ में तो ''क्राउन'' के प्रति निष्ठा का सवाल है, जो कि इस समय है, लेकिन बाद में यह प्रश्न उत्पन्न ही नहीं होता क्योंकि एक गणराज्य बन जाने पर भारत ''क्राउन'' के अधिकार क्षेत्र से पूरे तौर पर बाहर आ जाता है। राष्ट्रमण्डल के मामले में ''सम्राट'' का जिक्र इस साहचर्य के प्रतीक के रूप में किया गया है। आप ध्यान दें कि यह जिक्र ''सम्राट'' का है, ''क्राउन'' का नहीं। यह बात तो मामूली सी है लेकिन यह कुछ महत्व रखती है। बात यह है कि जहां तक भारतीय गणराज्य का सम्बन्ध है, जहां तक इसके संविधान और इसके कार्य संचालन का सम्बन्ध है, इसका किसी विदेशी प्राधिकारी से, किसी ''सम्राट'' से कोई सम्बन्ध नहीं है और इसके किसी भी नागरिक की ''सम्राट'' के प्रति या किसी अन्य विदेशी प्राधिकारी के प्रति निष्ठावान होने की कोई बात नहीं है। तथापि, वह गणराज्य किन्हीं ऐसे अन्य देशों के साथ सम्बन्ध रख सकेगा जहां राजतंत्र हो या कोई अन्य प्रशासन व्यवस्था हो। अतः इस घोषणा में कहा गया है कि यह नया भारतीय गणराज्य पूर्णतः प्रभुसत्ता सम्पन्न है और ''सम्राट'' के प्रति इसकी कोई निष्ठा नहीं है, जैसी कि राष्ट्रमंडल के अन्य देशों की है, तिस पर भी यह इस राष्ट्रमण्डल का पूर्ण सदस्य होगा और वह यह मानता है कि इस स्वतंत्र भागीदारी बल्कि यों कहिये कि साहचर्य के प्रतीक के रूप में ''सम्राट'' को मान्यता देगा।

अब मैं इस घोषणा को माननीय सदन के अनुमोदन के लिए इसके समक्ष रख रहा हूं। इस अनुमोदन के अलावा, इसके अनुसार कोई कानून बनाने का कोई प्रश्न नहीं है। राष्ट्रमण्डल से परे इसके लिए कोई कानून नहीं है। इसमें कोई औपचारिकता भी नहीं है जो आमतौर पर संधियों के मामले में हुआ करती है। यह स्वेच्छा से किया गया समझौता है

[माननीय श्री जवाहरलाल नेहरू]

जो स्वेच्छा से समाप्त किया जा सकता है। इसलिए अगर यह सदन इसका अनुमोदन कर देता है तो इस पर कोई विधान या कानून बनाना जरूरी नहीं होगा। इस घोषणा विशेष में ''सम्राट'' की स्थिति के बारे में कुछ अधिक नहीं कहा गया है, सिवाय इसके कि वह प्रतीक होगा, मगर यह बात पूरी तरह साफ कर दी गई है—यह पूरी तरह साफ कर दी गई थी—कि ''सम्राट'' का कदापि कोई कृत्य नहीं होगा। उसका एक दर्जा है। राष्ट्रमण्डल अपने आप में कोई निकाय नहीं है, काम करने के लिए इसका कोई संगठन नहीं है और ''सम्राट'' के भी कोई कृत्य नहीं हो सकते।

इस घोषणा के कुछ नतीजे भी निकलेंगे। इसके अलावा और कोई दायित्व नहीं होगा कि एक दूसरे के साथ मित्रता का रुख अपनाया जायेगा, आपसी सहयोग की इच्छा होगी, जो हमेशा इस बात पर निर्भर करेगी कि कोई कितना सहयोग करना चाहता है और कहां तक अपनी ही नीति पर चलना चाहता है। ऐसा कोई दायित्व नहीं है जैसे कि कोई वचनबद्धता हो। मगर एक बिल्कुल नई बात लाने की कोशिश की गई है और मैं अच्छी तरह समझ सकता हूं कि वकील लोग क्यों असुविधा सी अनुभव कर रहे हैं, ऐसा इसलिए है कि पहले का ऐसा कोई उदाहरण नहीं मिलता और न इस जैसी बात कभी हुई है। कुछ लोग ऐसा भी महसूस कर सकते हैं कि उसके पीछे कोई ऐसी बात है जो वे पूरी तरह नहीं समझ पा रहे, इसमें कोई जोखिम है, कुछ खतरा है, क्योंकि देखने में यह बिल्कुल साधारण सी बात लगती है। लोगों के मन में इस तरह की आशंकाएं पैदा हो सकती हैं। जो बात मैंने अन्य जगहों पर कही है वही मैं यहां दोहराना चाहूंगा कि जो कुछ इस सदन के सामने रखा गया है उसके सिवाय और कुछ नहीं है।

एक या दो मामले जिनका इस घोषणा में जिक्र नहीं है मैं साफ कर देना चाहता हूं। एक यह है, जैसाकि मैंने कहा था कि ''सम्राट'' के इस सम्बन्ध में कदापि कोई कृत्य नहीं है। यह बात हमारी कार्यवाहियों के दौरान स्पष्ट कर दी गई थी और यह बात नि:सन्देह लन्दन में हुए सम्मेलन के कार्यवाही-सारांश में दर्ज है। एक अन्य बात यह है कि इस प्रकार की राष्ट्रमण्डल संस्था बनाने का एक उद्देश्य यह है कि अब एक ऐसे दर्जे की संस्था बनायी जाये तो पूरी तरह विदेशी और एक राष्ट्रीयता की होने के बीच की हो। स्पष्ट है कि राष्ट्रमण्डल के देश भिन्न-भिन्न राष्ट्र हैं।

भिन्न-भिन्न राष्ट्रीयताएं हैं। सामान्यतया या तो आपकी राष्ट्रीयता समान है या फिर आप विदेशी हैं। इन दोनों के बीच की कोई स्थिति नहीं है। अब तक इस राष्ट्रमण्डल में या ब्रिटिश राष्ट्रमण्डल में एक दूसरे को आपस में जोड़ने वाली एक कड़ी थी और वह थी ''सम्राट'' के प्रति निष्ठा। अतः इस कड़ी से एक तरह से मोटे तौर पर समान राष्ट्रीयता थी। जब हम गणराज्य बन जायेंगे तो वह कड़ी टूट जायेगी, समाप्त हो जायेगी। अब अगर हम इन देशों में से किसी एक देश को किसी मामले में तरजीह देना चाहें या कोई विशेषाधिकार देना चाहें तो हम साधारणतया ऐसा नहीं कर सकेंगे क्योंकि ''सर्वाधिक अनुग्रह प्राप्त राष्ट्र खण्ड'' नाम से कहे जाने वाले खण्ड के कारण हर देश उतना ही विदेशी होगा जितना कोई अन्य देश। अब हम उस विदेशीपन की स्थिति को समाप्त करना चाहते हैं। इस बात को अपने हाथ में रखना चाहते हैं कि हम दूसरे देश को क्या विशेषाधिकार या वरीयता, यदि कोई देना चाहें तो, दे सकते हैं। यह बात दो देशों द्वारा केवल संधि करके या कोई अन्य व्यवस्था करके तय की जायेगी, ताकि देशों के आपसी सम्बन्धों का नया आधार बने—या बनाने की कोशिश की जाये—और वह सम्बन्ध ऐसे हों कि अन्य देश, एक तरह से विदेशी होते हुए भी, पूरी तरह विदेशी न रहें। मैं यह पूरी तरह नहीं जानता कि बाद में हम इस मामले से कैसे निबटेंगे। इसका निर्णय सदन को करना होगा—अर्थात् यह अधिकार, केवल अधिकार, लेने का कि यदि हम चाहें तो राष्ट्रमण्डल के देशों के साथ, कुछ वरीयताओं या विशेषाधिकारों के बारे में बात कर सकें। वे क्या हों, कैसे हों, इसका निर्णय हर मामले में हम स्वयं करेंगे। इन तथ्यों के अलावा गोपनीय रूप से या अन्यथा कोई ऐसी बात तय नहीं की गई है जो लोगों के सामने न रखी गई हो।

सदन को याद होगा कि एक बार राष्ट्रमण्डलीय नागरिकता के बारे में कुछ बात हुई थी। यह समझ पाना कठिन था कि राष्ट्रमण्डलीय नागरिकता का स्वरूप क्या हो, सिवाय इसके कि इसका मतलब वह था कि राष्ट्रमण्डल के देश एक दूसरे के लिए पूरी तरह विदेशी न रहें। यह गैर-विदेशीपन वाली बात अब भी है, मगर मैं समझता हूं कि यह अच्छा ही हुआ कि हमने ऐसी बात करनी छोड़ दी जो स्पष्ट नहीं थी, जिसकी निश्चित परिभाषा नहीं की जा सकती थी, मगर दूसरी बात अब भी बनी हुई है, जैसा कि मैंने अभी कहा है: वह बात यह है कि हमें यह अधिकार स्वयं लेना चाहिये कि यदि हम किसी समय चाहें तो राष्ट्रमण्डल के देशों के साथ संधि या अन्य व्यवस्था कर सकें ताकि विशेषाधिकारों और वरीयताओं का परस्पर आदान-प्रदान सुनिश्चित हो सके।

[माननीय श्री जवाहरलाल नेहरू]

मैंने इस दस्तावेज की बातें संक्षेप में सदन के सामने रखी हैं। यह एक साधारण सा दस्तावेज है और फिर भी सदन अच्छी तरह जानता है कि यह बहुत ही महत्वपूर्ण दस्तावेज है या यों कहें कि इसमें जो उपबन्ध हैं उनका महान एवं ऐतिहासिक महत्व है। कुछ सप्ताह पूर्व मैं भारत के प्रतिनिधि के रूप में इस सम्मेलन में गया था। मैंने यहां अपने सहयोगियों से परामर्श किया था, नि:संदेह पहले किया था, क्योंकि यह एक बहुत बड़ा उत्तरदायित्व था और जब भारत के भविष्य का सवाल हो तो कोई भी आदमी इतना बड़ा नहीं है कि वह अपने आप ही इस उत्तरदायित्व को निभा सके। पिछले कई महीनों में हमने प्राय: एक दूसरे से परामर्श किया, बड़े-बड़े प्रतिनिधि संगठनों से परामर्श किया, इस सदन के कई सदस्यों से भी परामर्श किया। फिर भी जब मैं वहां गया तो मुझ पर एक बहुत बड़ा उत्तरदायित्व था और मैं उसके भार को समझता था। मुझे सलाह देने वाले योग्य साथी थे, मगर मैं एकमात्र भारत का प्रतिनिधि था और एक तरह से उस समय भारत का भविष्य मेरे हाथ में था। इस मायने में मैं अकेला था भी और नहीं भी था क्योंकि जैसे ही मैं हवाई जहाज से गया और उस सम्मेलन में जाकर बैठा तो मैं अपने बीते हुए दिनों की अनेक यादों से घिर गया और एक-एक करके उनके चित्र मेरे सामने आये, जो संतरी और रक्षक की तरह मुझ पर दृष्टि रखे हुए थे और शायद मुझसे कह रहे थे कि मैं लड़खड़ाऊं नहीं और उनको भूलूं नहीं। जैसाकि अनेक माननीय सदस्यों को भी याद होगा, मुझे उन्नीस साल पहले का वह दिन याद आया जबकि हमने आधी रात को रावी नदी के किनारे प्रतिज्ञा की थी और मुझे पहली बार 26 जनवरी के दिन की याद आई और याद आया कि किस तरह कठिनाई और रुकावट के बावजूद हम हर साल यह प्रतिज्ञा करते रहे हैं और फिर मुझे उस दिन की याद आई जब इसी जगह खड़े होकर मैंने इस सदन के सामने एक संकल्प रखा था। वह इस माननीय सदन के सामने सबसे पहले रखे गये संकल्पों में से था, वह ऐसा संकल्प था जो ''उद्देश्यों का संकल्प'' के नाम से जाना जाता है। उस बात को हुए दो साल और पांच महीने बीत चुके हैं। उस संकल्प में हमने मोटे तौर पर बताया था कि हम किस तरह की स्वतंत्र सरकार या गणराज्य अपने देश में चाहते हैं। बाद में एक अन्य जगह और एक प्रसिद्ध अवसर पर इस बारे में भी विचार किया गया और वह अवसर था कांग्रेस का जयपुर अधिवेशन, क्योंकि केवल मेरा ही नहीं बल्कि कई अन्य सहयोगियों के दिमाग इस समस्या से जूझ रहे थे और कोई ऐसा रास्ता निकालने की कोशिश में थे जो भारत के सम्मान और गरिमा और स्वाधीनता के अनुकूल हो और इसके साथ-साथ दुनियां की बदलती

परिस्थितियों के भी अनुकूल हो, कोई ऐसा रास्ता, जिससे भारत के लक्ष्य में हम आगे बढ़ सकें, आगे बढ़ने में हमें मदद मिले, कोई ऐसा रास्ता, जिससे दुनियां में शांति स्थापना के लक्ष्य में हम आगे बढ़ सकें और साथ ही वह ऐसा रास्ता हो जिससे हम अपनी प्रत्येक प्रतिज्ञा का, जो हमने ली है, ठीक-ठीक और पूरी तरह पालन कर सकें। मेरे दिमाग में यह बात साफ थी कि राष्ट्रमण्डल के साथ या किसी दूसरे ग्रुप के साथ किसी तरह का मेल-जोल रखने के चाहे कितने ही लाभ हों मगर किसी एक बड़े से बड़े लाभ के लिए हम अपनी प्रतिज्ञाओं के एक छोटे से भाग को भी छोड़ नहीं सकते, क्योंकि कोई भी देश अपने घोषित सिद्धान्तों में ढिलाई करके प्रगति नहीं कर सकता। इसलिए इन महीनों के दौरान हमने इस बारे में सोचा और आपस में विचार भी किया और वह सलाह मैं साथ लेकर गया था। क्या मैं यह संकल्प पढ़कर सुनाऊं जो कांग्रेस के जयपुर अधिवेशन में पास किया गया था ताकि आपके दिलों में उसकी याद ताजा हो जाये? शायद आपको इसमें दिलचस्पी हो और मेरी आप से प्रार्थना है कि आप इस संकल्प के एक-एक शब्द पर ध्यान दें:

> ''पूर्ण स्वाधीनता की प्राप्ति और भारतीय गणराज्य की स्थापना की दृष्टि से, जो स्वाधीनता का प्रतीक होगा और जिससे भारत को विश्व के राष्ट्रों में ऐसा दर्जा मिलेगा जिसका कि यह उचित अधिकारी है, यूनाइटेड किंगडम और राष्ट्रमण्डल के साथ इसके वर्तमान सम्बन्ध को आवश्यक रूप से बदलना ही होगा। परन्तु भारत अन्य देशों के साथ ऐसे सभी सम्बन्ध बनाये रखने का इच्छुक है जो इसके कार्य करने की स्वतंत्रता और स्वाधीनता के मार्ग में आड़े न आयें और कांग्रेस राष्ट्रमंडल के स्वाधीन राष्ट्रों के साथ उनके हित के लिए और विश्व शांति को बढ़ावा देने के लिए स्वतंत्र साहचर्य का स्वागत करेगी।''

आप देखेंगे कि इस संकल्प की कुछ आखिरी पंक्तियां लगभग लन्दन-घोषणा की पंक्तियों की तरह हैं।

हमने जो पहले प्रतिज्ञायें की थीं उन सभी को ध्यान में रखकर और अन्ततः इस माननीय सदन के संकल्प को ध्यान में रखकर, ''उद्देश्य संकल्प'' को और बाद में जो कुछ हुआ उसे ध्यान में रखकर तथा उस संकल्प में अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी ने जो आदेश मुझे दिया था उसे सामने रखकर मैं वहां गया और मैं पूरी नम्रता से आप

[माननीय श्री जवाहरलाल नेहरू]

से कहना चाहता हूं कि मैंने उस आदेश का अक्षरशः पालन किया है। *(तुमुल हर्ष ध्वनि)*। पिछले कई सालों के दौरान हम सब एक बहुत ही कठिन दौर से गुजरे हैं, हमने विपक्ष में अपने जीवन बिताये हैं, संघर्ष करते बिताये हैं और कभी असफलता में और कभी सफलता में बिताये हैं और हम में से अधिकतर लोगों पर बीते हुए दिनों के उन सपनों और परछाइयों का साया रहता है और जो आशाएं रही हैं और उन आशाओं के बाद अक्सर जो निराशाएं आई हैं उनका भी साया रहता है, फिर भी हमने देखा है कि उस कांटे की तरह चुभने वाली निराशा और हताशा में से भी हम अपने उद्देश्य की पूर्ति रूपी फूल को चुन सके हैं।

हम उन घटनाओं को देखकर ही स्थिति पर विचार न करें जो कि अब बीते हुए जमाने का हिस्सा बन चुकी हैं। आप कांग्रेस के संकल्प में, जो मैंने अभी पढ़कर सुनाया है, यह देखेंगे कि इसमें कहा गया है कि भारत गणराज्य बन जाता है तो राष्ट्रमण्डल के साथ इसके सम्बन्धों में परिवर्तन आना आवश्यक है। यह बात निश्चित है। इसमें आगे कहा गया है कि स्वतंत्र साहचर्य बना रह सकता है बशर्ते कि हमारी पूर्ण स्वाधीनता आश्वस्त हो। इस ''लन्दन-घोषणा'' में भी ठीक यही करने की कोशिश की गई है। मैं कहता हूं कि आप या कोई भी माननीय सदस्य बताये कि क्या भारत की स्वाधीनता, स्वतंत्रता पर कहीं भी थोड़ी-सी भी आंच आई है। मैं नहीं समझता कि आंच आई है। असल में सबसे अधिक जोर न सिर्फ भारत की स्वतंत्रता पर ही दिया गया है, बल्कि राष्ट्रमंडल के प्रत्येक सदस्य राष्ट्र की स्वतंत्रता पर दिया गया है।

प्रायः मुझसे सवाल किया जाता है कि हम इस राष्ट्रमण्डल में कैसे शामिल हो सकते हैं जिसमें रंगभेद की नीति चल रही है और जिसमें कुछ अन्य ऐसी बातें हो रही हैं जिन पर हम आपत्ति करते हैं? मैं समझता हूं कि यह एक अच्छा प्रश्न है और यह एक ऐसा मामला है जिससे आवश्यक रूप से हमें इस बारे में सोचने में कुछ कठिनाई आनी चाहिए। फिर भी यह एक ऐसा प्रश्न है जो वास्तव में पैदा ही नहीं होता। या यों कहिए कि जब हम किसी देश के साथ या देशों के गुट के साथ मित्रता करते हैं तो इसका यह मतलब नहीं होता कि हम उनकी दूसरी नीतियों आदि को भी स्वीकार करते हैं, इसका यह मतलब नहीं होता कि जो कुछ वे करें वही करने के लिए हम भी किसी तरह बंध जाते हैं। दरअसल यह सदन जानता है कि इस वक्त हम या हमारे देश के लोग विश्व के कुछ भागों में रंगभेद की नीति के खिलाफ संघर्ष कर रहे हैं।

यह सदन जानता है कि पिछले कुछ सालों में भारत द्वारा पहल किये जाने पर संयुक्त राष्ट्र संघ के सामने एक अहम सवाल दक्षिण अफ्रीका में भारतीयों की स्थिति का रहा है। मैं सदन की अनुमति से एक क्षण के लिए उस घटना का जिक्र करूंगा जो कल हुई अर्थात्, संयुक्त राष्ट्र महासभा में जो संकल्प कल पास किया गया उसका जिक्र करूंगा और हमारे शिष्टमण्डल ने इस मामले में जिस तरीके से काम किया उसकी अपनी ओर से और अपनी सरकार की ओर से प्रशंसा करूंगा और दक्षिण अफ्रीका को छोड़कर संयुक्त राष्ट्र के अन्य लगभग सभी देशों की प्रशंसा करुंगा जिन्होंने आखिर में भारत के इस दृष्टिकोण का समर्थन किया। हमारी विदेशी नीति का एक स्तम्भ जिसका बारम्बार जिक्र किया जाता रहा है, यह है: रंगभेद के विरुद्ध संघर्ष करना, दमन के शिकार लोगों की स्वाधीनता के लिए संघर्ष करना। क्या राष्ट्रमण्डल में रहकर आप इस प्रश्न पर अपनी नीति का परित्याग कर रहे हैं? हम अब तक राष्ट्रमण्डल का अधिराज्य (डोमीनियन) होते हुए भी दक्षिण अफ्रीकी भारतीयों के प्रश्न पर और अन्य प्रश्नों पर संघर्ष करते रहे हैं। यह मामला राष्ट्रमण्डल के अधिकार क्षेत्र में लाना हमारे लिए खतरनाक बात थी, क्योंकि ऐसा करने पर वही बात हो जाती जिस पर आप और हम आपत्ति करते हैं, यानी राष्ट्रमण्डल को एक ऐसा श्रेष्ठ निकाय मान लिया जाता जो कभी-कभी एक न्यायाधिकरण या न्यायाधीश की तरह काम करता है या यों कहिए कि अपने सदस्य राष्ट्रों के क्रियाकलापों पर निगरानी रखता है। अगर हम उस सिद्धान्त को एक बार मान लेते तो निश्चय ही उससे हमारी स्वाधीनता और प्रभुसत्ता कम हो जाती। इसलिए हम राष्ट्रमण्डल को इस रूप में मानने को तैयार नहीं थे और अब भी तैयार नहीं हैं और हम इसके लिए भी तैयार नहीं हैं कि राष्ट्रमण्डल के सदस्य-राष्ट्रों के आपसी विवाद राष्ट्रमण्डल संस्था के सामने लाये जायें। मित्रता के नाते निश्चय ही हम इस मामले पर चर्चा कर सकते हैं, वह एक अलग बात है। हम राष्ट्रमण्डल के दूसरे देशों में रहने वाले अपने देशवासियों की उचित स्थिति बनाये रखने के इच्छुक हैं। जहां तक हमारा सम्बन्ध है हम उनकी अन्दरूनी नीतियों पर वहां विवाद खड़ा नहीं कर सकते और न ही हम किसी देश के बारे में यह कह सकते हैं कि हम उस देश के साथ इसलिए अपने सम्बन्ध नहीं रख सकते कि उस देश की कुछ नीतियां हम नापसन्द करते हैं।

मुझे डर है कि यदि ऐसा रुख अपना लें तो किसी अन्य देश के साथ शायद ही हमारा कोई सम्बन्ध रह जाये, क्योंकि वह देश कोई न कोई ऐसा काम करता है जो

[माननीय श्री जवाहरलाल नेहरू]

हमें नापसन्द है। कभी-कभी ऐसा होता है कि मतभेद इतने बढ़ जाते हैं कि आप उस देश के साथ अपना सम्बन्ध तोड़ लेते हैं या कोई बड़ा झगड़ा खड़ा हो जाता है। कुछ वर्ष पहले संयुक्त राष्ट्र महासभा ने अपने सदस्य राष्ट्रों से यह सिफारिश करने का फैसला किया कि वे स्पेन से अपने राजनयिक प्रतिनिधि वापस बुला लें क्योंकि स्पेन को एक फासिस्ट देश समझा जाता था। मैं इस प्रश्न के गुण-दोषों में नहीं जा रहा हूं। कभी-कभी इस तरह के प्रश्न उठ खड़े होते हैं। वही प्रश्न फिर से पैदा हुआ है और उन्होंने उस निर्णय को पूरी तरह उलट दिया है और प्रत्येक राज्य से कह दिया है कि वह जैसा चाहे करे। यदि आप इस तरह से चलते हैं तो आप कोई भी देश ले लें, चाहे वह बड़ा देश हो या छोटा, सोवियत संघ द्वारा किये जाने वाले हर काम से तो आप सहमत नहीं होते, इसलिए हम सोवियत संघ में अपना प्रतिनिधि क्यों भेजें या हम वाणिज्यिक अथवा व्यापार के मामलों में उनके साथ मैत्री-संधि क्यों करें? आप संयुक्त राज्य अमेरिका की कुछ नीतियों के साथ भले ही सहमत न हों परन्तु इसका यह अर्थ नहीं है कि आप उनके साथ संधि नहीं कर सकते। राष्ट्रों के लिए वैदेशिक कार्य करने या कोई भी कार्य करने का यह तरीका नहीं हुआ करता। मैं समझता हूं कि इस दुनिया में सबसे पहली बात जो हमें महसूस करनी चाहिए वह यह है कि विश्व के भिन्न-भिन्न भागों में सोचने का तरीका अलग-अलग है, रहन-सहन का तरीका अलग-अलग है और जीवन के प्रति रवैया भी अलग-अलग है। हमारी अधिकतर कठिनाइयां तब पैदा होती हैं जब एक देश अपनी इच्छा और अपने रहन-सहन का तरीका दूसरे देशों पर लादने की कोशिश करता है। यह बात सही है कि हर देश अलग-थलग होकर नहीं रह सकता क्योंकि आज जो स्थिति विश्व की है उसमें विभिन्न देश धीरे-धीरे एक-दूसरे के नजदीक आ रहे हैं। अगर अलग-थलग रहने वाला कोई देश कोई ऐसा काम करता है जो अन्य देशों के लिए खतरनाक साबित हो तो अन्य देशों को हस्तक्षेप करना पड़ता है। एक बिल्कुल स्पष्ट उदाहरण यह दिया जा सकता है कि यदि कोई देश अपने यहां ऐसा वातावरण पैदा करता है जिसमें सभी तरह की खतरनाक बीमारियां पैदा हों तो अन्य देशों को आना पड़ेगा और वहां स्वच्छता सुनिश्चित करनी पड़ेगी, क्योंकि यह कोई देश नहीं देख सकता कि वे बीमारियां विश्व भर में फैल जायें। अपनाये जाने के लिए सही सिद्धान्त यही है कि कुछ सीमाओं के अधीन रहते हुए, हर देश को अपने तरीके से अपना जीवन व्यतीत करने की छूट होनी चाहिए।

इस समय विश्व में अलग-अलग विचारधाराएं हैं और इन विचारधाराओं से बड़े-बड़े झगड़े उठ खड़े होते हैं। क्या सही है या क्या गलत है, यह हम बाद में कभी सोच सकते हैं, या यह भी हो सकता है कि सही कुछ और ही हो। या तो आप यह चाहें कि कोई बड़ा झगड़ा खड़ा हो, बड़ा युद्ध हो जिससे इस राष्ट्र की या उस राष्ट्र की विजय हो या फिर आप यह चाहें कि वे अपने-अपने क्षेत्रों में शांति से रहें और अपनी विचारधारा के अनुसार अपना काम चलायें, अपना जीवन चलाएं, अपने राज्य के ढांचे को चलाएं और अन्त में तथ्यों से यह बात सिद्ध होने दें कि क्या सही है। मुझे इसमें बिल्कुल संदेह नहीं है कि अन्त में व्यवस्था ही है जिससे बात बनती है—बात बनने का अर्थ है मानव जाति की या अलग-अलग देशों के लोगों की प्रगति और बेहतरी—और यही एक स्थायी उपाय है और चाहे जितने सिद्धान्तों को माना जाये और चाहे जितना युद्ध लड़ा जाये उससे ऐसी व्यवस्था बनी नहीं रह सकती जिससे उक्त उद्देश्यों की पूर्ति न होती हो। मैंने इसका जिक्र इसलिए किया कि यह तर्क दिया गया था कि भारत राष्ट्रमण्डल में कैसे शामिल हो सकता है जबकि यह राष्ट्रमण्डल के कुछ देशों की कुछ नीतियों से सहमत नहीं है। मैं समझता हूं कि हमें इन दो मामलों को एक दूसरे से पूरी तरह अलग रखना चाहिए।

यह बात स्पष्ट है कि हम राष्ट्रमण्डल में शामिल इसलिए होते हैं कि हम समझते हैं कि यह हमारे लिए हितकारी है और क्योंकि संसार में कुछ ऐसे उद्देश्य हैं जिन्हें हम प्राप्त करना चाहते हैं। राष्ट्रमण्डल के अन्य देश इस कारण यह चाहते हैं कि हम उसमें बने रहें क्योंकि वे समझते हैं कि ऐसा होना उनके हित में है। यह बात परस्पर समझी गई है कि ऐसा राष्ट्रमण्डल के राष्ट्रों के हित में है और इसीलिए वे इसमें शामिल होते हैं। साथ ही, यह बात पूरी तरह स्पष्ट कर दी जाती है कि प्रत्येक देश अपने मार्ग पर चलने के लिए पूरी तरह स्वतंत्र है, यह हो सकता है कि कभी वे इस मार्ग पर इतने आगे चलें कि राष्ट्रमण्डल से अपने सम्बन्ध ही तोड़ लें। आज के संसार में जहां गड़बड़ फैलाने वाले बहुत से तत्व काम कर रहे हैं, जहां हम अक्सर युद्ध के कगार पर पहुंच जाते हैं, मैं समझता हूं कि अगर कोई संस्था बनी हुई है तो उसे तोड़ देने की बात करना सुरक्षा वाली बात नहीं है। इसके बुरे पहलुओं को तोड़कर अलग फैंकिये, जो बात आप की प्रगति में बाधा बनती है उसे तोड़ दीजिये क्योंकि कोई भी ऐसी किसी बात से सहमत नहीं हो सकता जो राष्ट्र के मार्ग में बाधा पैदा करती हो। अन्यथा, किसी संस्था को अहितकर बातों को अलग करने के अलावा, उस सहकारी संस्था को तोड़ देने के बजाय इसे चलते रहते देना बेहतर है जिससे इस विश्व का हित हो।

[माननीय श्री जवाहरलाल नेहरू]

यह घोषणा जो आपके सामने है कोई नई बात नहीं है फिर भी यह उस चीज का पूर्णतया नया रूप है जोकि एक बिल्कुल अलग रूप में मौजूद रही है। मान लीजिये हम इंग्लैंड से पूरी तरह अलग हो जाते और फिर हम राष्ट्रमण्डल में शामिल होने की इच्छा करते तो उस स्थिति में यह एक नयी बात होती। मान लीजिये कि राष्ट्रों का एक नया ग्रुप चाहे कि हम उसमें शामिल हो जायें और इस तरह हम उसमें शामिल हो जाते हैं तो वह एक नयी बात होती जिसके अनेक परिणाम होते। परन्तु इस समय हो यह रहा है कि एक संस्था काफी समय से बनी हुई है। लगभग एक वर्ष और आठ या नौ महीने पहले, 15 अगस्त, 1947 से, उस संस्था के मार्ग में बहुत बड़ा परिवर्तन आया। अब एक अन्य बड़ा परिवर्तन लाने का विचार हो रहा है। धीरे-धीरे धारणा बदल रही है। इसके बावजूद एक निश्चित कड़ी है जो अलग रूप में बनी हुई है। अब राजनीतिक दृष्टि से हम पूरी तरह स्वतंत्र हैं। आर्थिक दृष्टि से हम उतने ही स्वतंत्र हैं जितने कि स्वतंत्र राष्ट्र हो सकते हैं। कोई भी राष्ट्र इन अर्थों में शत-प्रतिशत स्वतंत्र नहीं हो सकता कि वह एक दूसरे पर बिल्कुल ही निर्भर न हो, परन्तु जो भी हो, भारत को अपने व्यापार के लिए, अपने वाणिज्य के लिए और अपनी आवश्यकता की कई तरह की वस्तुओं के लिए और दुर्भाग्यवश आज अपने अनाज के लिए और कई अन्य बातों के लिए विश्व के अन्य राष्ट्रों पर निर्भर रहना होगा। हम विश्व के अन्य देशों से पूरी तरह अलग-थलग होकर नहीं रह सकते। सदन इस बात को जानता है कि पिछली एक शताब्दी से अधिक समय में इंग्लैंड और इस देश के बीच सभी तरह के सम्पर्क रहे हैं, उनमें से अनेक खराब थे, बहुत ही खराब थे और हमने जीवन भर उन्हें समाप्त करने के लिए संघर्ष किया है। उनमें से कई इतने खराब नहीं थे, कई अच्छे भी हो सकते हैं और अनेक अच्छे हों या खराब, जो भी हैं, इस समय हैं। इन सम्पर्कों का पेटेंट उदाहरण मैं हूं जो इस माननीय सदन में मैं अंग्रेजी भाषा में बोल रहा हूं। निःसंदेह हम अपने प्रयोग के लिए उस भाषा को बदलने वाले हैं परन्तु सच्चाई यही है कि मैं अंग्रेजी भाषा में बोल रहा हूं और यह भी सच है कि ज्यादातर सदस्य जो बोलेंगे वे भी इसी भाषा में बोलेंगे। सच यही है कि हम कुछ नियमों और विनियमों के अनुसार यहां काम कर रहे हैं जिनका आदर्श ब्रिटिश संविधान रहा है। अधिकांश वर्तमान कानून उन्हीं के द्वारा बनाये गये हैं। अतः हमने आवश्यक रूप से इन्हें विकसित किया है। धीरे-धीरे जो कानून अच्छे हैं उन्हें हम रखेंगे और जो हमारे लिए खराब हैं उन्हें हम हटा देंगे। इस मामले में बिना कोई वैकल्पिक व्यवस्था किये एकदम से कोई परिवर्तन लाने से एक रिक्ति-सी पैदा हो जाती है

जो हानिकर हो सकती है। हमारी शिक्षा व्यवस्था काफी हद तक उनसे प्रभावित हुई है। हमारी सैनिक व्यवस्था उनसे प्रभावित हुई है और यह कुदरती बात है कि हमारी ब्रिटिश सेना जैसी स्थिति में पोषण हुआ है। मैं सदन के सामने कुछ पूर्णतया व्यावहारिक विचार रख रहा हूं। यदि हम पूरी तरह सम्बन्ध तोड़ लेते हैं तो परिणाम यह होगा कि किसी अन्य तरीके से काम चलाते रहने के लिए पर्याप्त व्यवस्था किये बिना एक अन्तराल की अवधि आ जायेगी, नि:सन्देह यदि हम इसका मूल्य चुकाने के लिए तैयार हों तो हम यह रास्ता चुन सकते हैं। यदि हम मूल्य चुकाना नहीं चाहते तो हमें नहीं चुकाना चाहिए और परिणामों का सामना करना चाहिए।

मगर मौजूदा मामले में हमें केवल इन छोटे-मोटे फायदों को ही नहीं देखना है, जो मैंने आपको बतायें हैं, जो हमें और अन्य लोगों को हो सकते हैं, बल्कि हमें विश्व की समस्याओं के प्रति व्यापक दृष्टिकोण से भी देखना है। जब मैं लन्दन में अन्य सरकारों के प्रतिनिधियों के साथ विचार कर रहा था तो मैंने महसूस किया कि मुझे पूरी तरह से भारतीय गणराज्य की प्रभुसत्ता और स्वाधीनता पर ही टिके रहना होगा। मैं किसी भी विदेशी ताकत के प्रति किसी प्रकार की वफादारी के मामले में कदापि कोई समझौता नहीं कर सकता था। मैंने वैसा ही किया। मैंने यह भी महसूस किया कि विश्व के मौजूदा हालात में और भारत और एशिया की मौजूदा स्थिति में यदि हम वहां मित्रता की भावना से इस प्रश्न को देखते हैं तो बेहतर होगा और इससे एशिया में और अन्य जगह समस्याएं हल हो जायेंगी। मैं मानता हूं कि मुझमें सही सौदा करने की योग्यता नहीं है। मैं बाजार के तौर-तरीकों से अनभिज्ञ हूं। तथापि, मैं समझता हूं कि मैं एक अच्छा लड़ने वाला हूं और यह भी समझता हूं कि मैं एक अच्छा मित्र हूं। मैं इन दोनों के बीच की स्थिति में नहीं हूं और इसलिए यदि आपको किसी चीज के लिए कड़ी सौदेबाजी करनी हो तो आप मुझे न भेजें। जब आप लड़ना चाहते हों तो मैं समझता हूं कि मैं अवश्य लडूंगा और फिर जब आप किसी बात का फैसला कर लेते हैं तब आपको उसी पर अटल रहना चाहिए और उस पर जान तक की बाजी लगा देनी चाहिए, परन्तु जहां तक अन्य छोटी-मोटी बातों का सवाल है, मैं समझता हूं कि दूसरे पक्ष की सद्भावना प्राप्त करना कहीं बेहतर है। दुर्भावना से यहां-वहां छोटा-मोटा फायदा उठाने की बजाय यह कहीं बेहतर है कि मित्रता और सद्भावना से कोई निर्णय कर लिया जाये। मैंने इस समस्या को इसी दृष्टिकोण से देखा और मैं यह भी बता दूं कि अन्य लोगों के बारे में मैंने क्या महसूस किया। मैं ब्रिटेन के प्रधानमंत्री की और वहां उपस्थित अन्य प्रतिनिधियों की भी सराहना

[माननीय श्री जवाहरलाल नेहरू]

करना चाहूंगा क्योंकि उन्होंने भी इस समस्या को इसी भावना से देखा, न कि एक दूसरे को बातों में नीचा दिखाना चाहा या इस घोषणा में यहां वहां कोई शब्द बदलना चाहा। यह हो सकता था कि यदि मैं पूरी कोशिश करता तो इस घोषणा में इधर-उधर कोई शब्द बदलवाने में सफल हो जाता, मगर घोषणा का सार नहीं बदला जा सकता था, क्योंकि हमारे लिये और कोई ऐसी बात नहीं थी जिसे हम उस घोषणा से प्राप्त कर सकते हों। मैंने ऐसा करना बेहतर नहीं समझा क्योंकि मैं एक धारणा पैदा करना चाहता था, और मैं समझता हूं कि ऐसी धारणा पैदा करना सही था, कि इन समस्याओं और विश्व की अन्य समस्याओं के प्रति भारत का दृष्टिकोण संकीर्ण नहीं है। भारत का दृष्टिकोण स्वयं अपनी शक्ति में और अपने भविष्य में आस्था और विश्वास पर आधारित है और इसलिए वह उस आस्था के मार्ग में आने वाले किसी देश से डरता नहीं है, वह किसी दस्तावेज में किसी शब्द या वाक्यांश से डरता नहीं है। परन्तु ऐसा इसी दृष्टिकोण के आधार पर होता है कि यदि आप किसी अन्य देश के साथ मित्र भाव से, सद्भावना से और विशाल हृदय से पेश आयें तो आपको वैसा ही प्रत्युत्तर मिलेगा और शायद आपको उससे कुछ अधिक ही मिलेगा जितना कि आप दे रहे हों। मुझे पूरा विश्वास है कि राष्ट्रों के बीच एक दूसरे के साथ बर्ताव करते समय जैसाकि व्यक्तियों के मामले में होता है, आपको सद्भावना के बदले में सद्भावना ही मिलती है और चाहे कितना ही कपट और चालाकी हो, बुरे रास्ते पर चलने से आपको अच्छे परिणाम नहीं मिल सकते। इसलिए मैंने सोचा कि यह एक ऐसा अवसर है जबकि न केवल इंग्लैंड को बल्कि अन्य देशों को भी, वास्तव में किसी सीमा तक विश्व को, प्रभावित किया जा सकता है, क्योंकि यह मामला जिस पर लन्दन में 10 डाउनिंग स्ट्रीट में विचार किया जा रहा था, ऐसा था, जिसने सम्पूर्ण विश्व का ध्यान आकर्षित कर रखा था। इसने विश्व का ध्यान अंशतः इसलिए आकर्षित कर रखा था कि भारत एक बहुत महत्वपूर्ण देश है, सम्भावित रूप से और वास्तविक रूप से भी और विश्व यह देखना चाहता था कि यह इतनी पेचीदा और कठिन समस्या, जिसका कोई समाधान दिखाई नहीं देता था, कैसे हल होती है। यदि हम यह समस्या प्रसिद्ध वकीलों पर छोड़ देते तो यह हल नहीं हो सकती थी। वकील जीवन में उपयोगी होते हैं, परन्तु प्रत्येक क्षेत्र में उनकी भूमिका नहीं होनी चाहिए। यह समस्या इन अतिवादी, संकीर्ण राष्ट्रवादियों द्वारा भी हल नहीं की जा सकती थी जो न तो अपने दायें देख सकते हैं और न बायें ही, परन्तु जो अपनी संकीर्ण भावनाओं के क्षेत्र में ही रहते हैं और इस कारण भूल जाते हैं कि विश्व आगे बढ़ रहा है। यह समस्या उन लोगों द्वारा

भी हल नहीं की जा सकती थी जो बीते हुए जमाने में ही रहते हैं और यह महसूस नहीं कर सकते कि मौजूदा जमाना बीते हुए जमाने से अलग है और आने वाला जमाना और भी ज्यादा अलग होगा। यह समस्या कोई ऐसा व्यक्ति हल नहीं कर सकता था जिसका भारत में और भारत के भाग्य में विश्वास न हो।

मैं चाहता था कि विश्व के देश यह देखें कि ऐसा नहीं है कि भारत का अपने पर विश्वास न हो और यह कि भारत उनके साथ भी सहयोग करने को तैयार है जिनसे वह पहले कभी लड़ता रहा है, बशर्ते कि आज सहयोग का आधार सम्मानजनक हो, वह आधार स्वतंत्र हो, यह एक ऐसा आधार हो जिसके नतीजे केवल हमारे लिए ही नहीं बल्कि विश्व के लिए भी अच्छे हों। यानि हम केवल इस कारण ही किसी से सहयोग करने से इंकार नहीं करेंगे कि उससे पहले कभी हमारी लड़ाई हुई थी और इस तरह हम अपने पिछले ''कर्मों'' का बोझ अपने ऊपर उठाये हुए हैं। हमें बीते हुए समय को उसकी सभी बुराइयों के साथ भूल जाना है। यदि मैं पूरी नम्रता से कहूं तो मैं चाहता था कि विश्व के देश मुद्दों को कुछ भिन्न दृष्टिकोण से देख सकें या यह देखने का प्रयत्न कर सकें कि अब महत्वपूर्ण प्रश्नों के प्रति क्या रूप अपनाया जा सकता है और उन्हें कैसे निपटाया जा सकता है। हमने अक्सर देखा है कि विश्व की विधान सभाओं में होने वाले तर्क-वितर्कों में कटुता का रुख होता है, एक दूसरे को बुरा भला कहने की बात होती है, एक दूसरे की बात को बिल्कुल न समझने की इच्छा रहती है, बल्कि यों कहिये कि जानबूझकर गलत समझने की और चालाकी भरी बातें कहने की इच्छा रहती है। हो सकता है कि हममें से किसी के लिए समय-समय पर चालाकी भरी बातें कहना और अपने लोगों से या कुछ अन्य लोगों से उसके लिए वाह-वाही लेना संतोष की बात हो। मगर आज के विश्व के माहौल में जब हम विनाशकारी युद्धों के कगार पर खड़े हैं, जब राष्ट्रीय भावनाएं भड़की हुई हैं और जब अचानक बोले गये शब्द से भी भारी अन्तर पड़ सकता है, किसी जिम्मेदार आदमी के लिए ऐसा करना गलत बात है।

कुछ लोगों का विचार है कि राष्ट्रमण्डल में शामिल होकर या इसका सदस्य बने रहकर हम एशिया में अपने पड़ोसी देशों से दूर हो रहे हैं या हमारे लिए दूसरे देशों के साथ, विश्व के बड़े-बड़े देशों के साथ, सहयोग करना ज्यादा मुश्किल हो गया है।

[माननीय श्री जवाहरलाल नेहरू]

मगर मैं समझता हूं कि राष्ट्रमण्डल से बाहर रहने के बजाय इसमें रहकर हमारे लिए दूसरे देशों के साथ निकट के सम्बन्ध बढ़ाना अधिक आसान है। कहने में यह बात कुछ अजीब सी लगती है। फिर भी मैं ऐसा कहता हूं और मैंने इस बारे में काफी सोच विचार किया है। राष्ट्रमण्डल दूसरे देशों से हमारे सहयोग और मित्रता के मार्ग में आड़े नहीं आता। अन्ततः हमें ही निर्णय करना होगा और अन्ततः वह निर्णय हमारी अपनी शक्ति पर ही निर्भर करेगा। यदि हम राष्ट्रमण्डल से पूरी तरह अलग हो जायें तो इस समय हम पूरी तरह अलग-थलग पड़ जायेंगे। पूरी तरह अलग-थलग हम रह नहीं सकते और इसलिए परिस्थितियों से विवश होकर हमें किसी न किसी दिशा में झुकाव रखना होगा। मगर किसी न किसी दिशा में वह झुकाव अनिवार्यतः आदान-प्रदान की बात होगी। उसका स्वरूप मैत्री का हो सकता है, कुछ देने का और बदले में कुछ लेने का हो सकता है। दूसरे शब्दों में उससे वचनबद्धता हो सकती है जो मौजूदा स्थिति से कहीं अधिक हो। इस समय कोई वचनबद्धता नहीं है। मेरा कहना है कि इस तरह हम दूसरे देशों के साथ मित्रता स्थापित करने और यदि आप चाहें तो, दूसरे देशों के बीच परस्पर समझ-बूझ के लिए एक पुल का काम करने के लिए आज अधिक स्वतंत्र हैं। मैं इसे बहुत अधिक महत्व भी नहीं देना चाहता, फिर भी इसे बहुत कम महत्व देना भी ठीक नहीं है।

मैं चाहता हूं कि आप अपने आस-पास के आज के विश्व को देखें और विशेष रूप से पिछले दो वर्षों की स्थिति पर दृष्टि डालें और देखें कि विश्व के देशों में भारत की सापेक्ष स्थिति क्या है। मैं समझता हूं कि आप पायेंगे कि इन दो वर्षों में या इससे कुछ कम समय में, प्रभाव में और प्रतिष्ठा में, भारत का स्थान अन्य राष्ट्रों की अपेक्षा अधिक ऊंचा हुआ है। मेरे लिए यह सही-सही बता पाना कुछ कठिन है कि भारत ने क्या किया है या क्या नहीं किया है। किसी के लिए भी यह आशा करना बेतुकी बात होगी कि भारत विश्व में सभी उद्देश्यों के लिए जिहाद छेड़े और उन उद्देश्यों को प्राप्त कर ले। जिन मामलों में सफलता मिली है उनके बारे में भी ढिंढोरा पीटना उचित नहीं है। मगर एक सच्चाई जिसकी कोई घोषणा करना आवश्यक नहीं है, यह है कि इस समय विश्व के मामलों में भारत की प्रतिष्ठा और प्रभाव है। इस बात को देखते हुए कि लगभग डेढ़ वर्ष पूर्व ही भारत स्वतंत्र राष्ट्र बना है, भारत ने आज जो भूमिका निभाई है, वह आश्चर्यजनक है।

एक बात मैं कहना चाहूंगा और वह यह है। यह जाहिर है कि इस तरह की घोषणा या संकल्प में जो मैंने सदन के सामने रखा है, संशोधन की गुंजाइश नहीं होती। यह या तो स्वीकार किया जाता है या अस्वीकार किया जाता है। मुझे यह देखकर आश्चर्य हुआ है कि कुछ माननीय सदस्यों ने संशोधनों की सूचनाएं दी हैं। किसी विदेशी शक्ति के साथ कोई संधि या तो स्वीकार की जाती है या अस्वीकार की जाती है। यह आठ या नौ देशों की संयुक्त घोषणा है और इसमें इस सदन में या किसी अन्य सदन में संशोधन नहीं किया जा सकता। इसे स्वीकार किया जा सकता है या अस्वीकार किया जा सकता है। अत: मैं आपसे निवेदन करूंगा कि आप इसके सभी पहलुओं पर विचार करें। सबसे पहले आप यह देखें कि क्या यह हमारी पुरानी प्रतिज्ञाओं के अनुरूप है और यह कि इससे कोई प्रतिज्ञा भंग तो नहीं होती। यदि मुझे यह सिद्ध करके दिखा दिया जाये कि इससे कोई प्रतिज्ञा भंग होती है जो हमने ले रखी है, कि इससे भारत की स्वाधीनता पर किसी तरह का अंकुश लगता है तो निश्चय ही मैं इसका पक्षधर नहीं रहूंगा। दूसरे, आपको देखना चाहिए कि क्या इससे हमारा और विश्व के बाकी देशों को भला होता है। मैं समझता हूं कि इसमें कोई सन्देह नहीं है कि इससे हमारी भलाई होगी, कि इस समय राष्ट्रमण्डल में बने रहना हमारे लिए हितकारी होगा और विस्तृत अर्थों में, विश्व के कुछ उद्देश्यों के लिए भी, जिनका हम प्रतिनिधित्व करते हैं, यह लाभदायक होगा और अन्त में, मैं कहना चाहूंगा कि यह समझौता न करना निश्चय ही विश्व के इन उद्देश्यों के लिए और हमारे लिए भी हानिकारी होता।

अन्तिम बात यह है कि इस सदन को इस घोषणा को और जो चर्चाएं वहां पर हुईं जिनके परिणामस्वरूप यह घोषणा हुई, उनको कितना महत्व देना चाहिए। यह एक तरीका है, एक अभीष्ट तरीका है और एक ऐसा तरीका है जो रोगी के लिए औषधि बनकर आता है। इस संसार के लिए, जो आज बीमार है और जिसके दस वर्ष के या इससे भी पुराने कई घाव भरे नहीं है, यह आवश्यक है कि हम इसकी समस्याओं पर विचार करें, भावुक होकर और द्वेष से नहीं और जो बीत चुका है उसे बार-बार दोहरा कर नहीं, बल्कि मित्रता की भावना से और राहत पहुंचाने की भावना से विचार करें। मैं समझता हूं इस घोषणा का और इससे पहले जो कुछ हुआ उसका मुख्य महत्व यह है कि कुछ देशों के साथ हमारे सम्बन्धों में इससे सुधार हुआ। हम किसी भी तरह उनके अधीन नहीं हैं और वे भी किसी भी तरह हमारे अधीन नहीं है। हम अपने रास्ते पर चलेंगे

[माननीय श्री जवाहरलाल नेहरू]

और वे अपने रास्ते पर। मगर हमारे रास्ते मित्रता के रास्ते होंगे बशर्ते कि कोई प्रतिकूल बात न हो जाये, बहरहाल एक दूसरे को समझने, एक दूसरे के साथ मित्रता रखने और एक दूसरे के साथ सहयोग करने के प्रयत्न किये जायेंगे। और यह बात कि हमने राहत पहुंचाने वाले इस तरह के नए सम्बन्ध कायम करने शुरू किये हैं हमारे लिए अच्छी होगी, उनके लिए अच्छी होगी और मैं समझता हूं कि सारे विश्व के लिए अच्छी होगी। (*हर्षध्वनि*)

प्रो. शिब्बन लाल सक्सेना (संयुक्तप्रान्त : जनरल): महोदय, मैं इस प्रस्ताव में निम्नलिखित संशोधन पेश करता हूं:

''(1) That in the motion, *for the words* 'do hereby ratify' the words has carefully considered *be substituted*:

(2) That the following be added at the end of the motion:

''and is of opinion that membership of the Commonwealth is incompatible with India's new status of a Sovereign Independent Republic. Besides, the terms of membership are derogatory to India's dignity and her new status, and as such are bound to circumscribe and limit her freedom of action in international affairs and tie her down to the chariot-wheel of Anglo-American power bloc. India with a population 350 millions out of a total population of about 500 millions of the whole of the Commonwealth cannot accept the King of England as the Head of the Commonwealth in any shape or form. Also, India cannot become the member of a Commonwealth, many members of which still regard Indians as an inferior race and enforce colour bar against them and deny them even the most elementary rights of citizenship. The recent anti-Indian riots in South Africa, the assertion of the all-White policy in Australia and the execution of Ganapathy and the refusal to commute the death sentence on Sambasivan in Malaya in spite of the representations of the Indian Government clearly show that India cannot derive any advantage from the membership of the Commonwealth and the Britain and the other members of the Commonwealth cannot give up their Imperialist and racial policies.

Considering all these facts and also considering the fact that the Congress Party, which is in a absolute majority in the Constituent Assembly and in other provincial legislatures in the country, has had the complete independence of India with the severance of the British connection as its declared goal at the time of the last general elections, any new relationship in contravention of that policy with the British Commonwealth can only be properly decided by the new Parliament of the Indian Republic, which will be elected under the new constitution on the basis of adult suffrage.

This Assembly, therefore, resolves that the question of India's membership of the Commonwealth be deferred until the new Parliament is elected and the wishes of the people of the country clearly as certained. This Assembly calls upon the Prime Minister of India to inform the Prime Minister of Great Britain and other members of the Commonwealth accordingly.''

(1) कि प्रस्ताव में ''..... यह सभा ..... अनुसमर्थन करती है'' *शब्दों के स्थान पर* ''..... इस सभा ने ..... पर ध्यानपूर्वक विचार किया है'' *शब्द रखे जायें*।

(2) कि प्रस्ताव के अन्त में निम्नलिखित शब्द जोड़ दिये जायें:

''और इस सभा का मत है कि राष्ट्रमण्डल की सदस्यता सर्वसत्ता प्राप्त स्वतंत्र गणराज्य के रूप में भारत की नई स्थिति के अनुकूल नहीं है। इसके अतिरिक्त सदस्यता की शर्तें भारत की प्रतिष्ठा और उसकी नई स्थिति के लिए अपमानजनक हैं और इसलिए वे अवश्यमेव अन्तर्राष्ट्रीय मामलों में उसकी कार्य स्वतंत्रता को सीमित तथा कम कर देंगी और उसे आंग्ल-अमरीकी गुट रूपी रथ के पहिये से बांध देंगी। भारत, जिसकी जनसंख्या समस्त राष्ट्रमण्डल की 50 करोड़ जनसंख्या में से 35 करोड़ है, इंग्लैंड के सम्राट को किसी रूप में अथवा शक्ल में राष्ट्रमण्डल का प्रधान स्वीकार नहीं कर सकता। और भारत उस राष्ट्रमण्डल का सदस्य भी नहीं बन सकता जिसके कई सदस्य अब भी भारतीयों को नीची प्रजाति समझते हैं और उसके विरुद्ध रंगभेद बरतते हैं और उन्हें नागरिकता के समस्त मूल अधिकारों से वंचित किये हुए हैं। दक्षिणी अफ्रीका में अर्वाचीन भारत विरोधी उत्पात, आस्ट्रेलिया में सर्वश्वेत

[प्रो. शिब्बन लाल सक्सेना]

नीति और मलाया में भारत सरकार के विरोध के होते हुए भी गणपति को फांसी देना और साम्बशिवम् के मृत्युदण्ड को कम न करना स्पष्टतया सिद्ध करते हैं कि भारत राष्ट्रमण्डल की सदस्यता से कोई लाभ नहीं उठा सकता और यह भी सिद्ध करते हैं कि ब्रिटेन और राष्ट्रमण्डल के अन्य सदस्य अपनी साम्राज्यवादी और प्रजातीय नीतियों को छोड़ नहीं सकते।

इन सब बातों पर विचार करके और इस बात पर भी विचार करके कि कांग्रेस दल ने, जिसे विधान-परिषद् में और देश के अन्य भारतीय विधानमण्डलों में पूर्ण बहुमत प्राप्त है, सामान्य निर्वाचनों के समय भारत की पूर्ण स्वतंत्रता और ब्रिटिश सम्बन्धों के विच्छेद को अपना घोषित उद्देश्य रखा था, उस नीति के विपरीत ब्रिटिश राष्ट्रमण्डल से कोई नया सम्बन्ध यथोचित रूप से भारतीय गणराज्य की नई संसद द्वारा ही निश्चित किया जा सकता है, जो नये विधान के अंतर्गत व्यस्क मताधिकार के आधार पर निर्मित होगी।

अत: परिषद यह निश्चय करती है कि राष्ट्रमण्डल में भारत की सदस्यता के प्रश्न को तब तक स्थगित कर दिया जाये जब तक कि कोई नई संसद निर्मित नहीं होती और देश की जनता की इच्छायें स्पष्टत: नहीं जानी जातीं। यह परिषद् भारत के प्रधानमंत्री को आदेश देती है कि वे ब्रिटेन के प्रधानमंत्री और राष्ट्रमण्डल के अन्य सदस्यों को तदनुसार सूचना दें।''

महोदय, मैंने अपने नेता प्रधानमंत्री का ऐतिहासिक भाषण बड़े ध्यान से सुना है। उन्होंने स्वयं कहा है कि यह एक ऐतिहासिक अवसर है और जिस घोषणा का वह चाहते हैं कि हम अनुसमर्थन करें वह भी एक ऐतिहासिक घोषणा है। हाल ही के विगत समय में ऐसे बहुत अवसर नहीं आये हैं जब हमें ऐसे महत्वपूर्ण प्रश्नों के बारे में निर्णय करने के लिये कहा गया हो; सम्भवतया ऐसा ही हाल ही का अवसर वह था जब देश को भारत के विभाजन के प्रश्न के विषय में निर्णय लेना पड़ा। उस प्रश्न पर इस सभा ने विचार नहीं किया था वरन् अखिल भारतीय कांग्रेस समिति ने उस बारे में निर्णय किया था। हम जानते हैं कि उस अवसर पर जो निर्णय किया गया उसके परिणाम बहुत अच्छे नहीं रहे हैं। मैं विभाजन की योजना के अत्यन्त तीव्र विरोधियों में से एक था। आज भी

मुझे, इस लंदन घोषणा पर, जिस पर मेरे नेता पहले से सहमत हो चुके हैं और जिसका अनुसमर्थन वह चाहते हैं कि हम करें, उनसे अपनी असहमति व्यक्त करनी है।

***पं. बालकृष्ण शर्मा** (संयुक्तप्रान्त : जनरल): महोदय, एक व्यवस्था का प्रश्न है। मैं जानना चाहूंगा कि इस बात को देखते हुए कि इस संशोधन का स्वरूप नकारात्मक है, क्या यह संशोधन नियमानुकूल है?

***अध्यक्ष:** माननीय सदस्य ने स्वयं कहा है कि यह ''लगभग नकारात्मक'' है, ''नकारात्मक'' नहीं, इसीलिए मैंने इसकी अनुमति दे दी है।

***माननीय श्री जवाहरलाल नेहरू:** महोदय, मैं अंतर्राष्ट्रीय संधियों के बारे में आप का विनिर्णय चाहूंगा कि जब मौजूदा सरकार ने इस तरह की संधि कर ली है तो क्या ऐसा संशोधन लाना उचित होगा। मैं तो यही समझता हूं कि कोई संधि या तो स्वीकार की जा सकती है या अस्वीकार की जा सकती है, किसी संधि में संशोधन नहीं किया जा सकता।

***अध्यक्ष:** यहां हम नियमों के अनुसार कार्य करते हैं और मुझे यह देखना है कि क्या नियमों के अन्तर्गत यह संशोधन ठीक है। उसका संधि पर क्या प्रभाव पड़ेगा यह मैं नहीं जानता, परन्तु मैं समझता हूं कि नियमों के अन्तर्गत यह संशोधन ठीक है और इसलिए मैंने इसके लिए अनुमति दी है। नि:संदेह, सदन यदि यह समझता है कि इसे पास नहीं किया जाना चाहिए तो वह इसे अस्वीकार कर सकता है।

***श्री जेड.एच. लारी** (संयुक्तप्रान्त : मुस्लिम): क्या मैं जान सकता हूं कि क्या इस घोषणा का अनुसमर्थन करना संविधान बनाने वाली इस सभा के क्षेत्राधिकार में है?

***अध्यक्ष:** जी हां, मैं समझता हूं कि है।

***प्रो. शिब्बन लाल सक्सेना:** मैं इस सभा से न तो इस घोषणा को स्वीकार करने के लिए कह रहा हूं और न ही इसे अस्वीकार करने के लिए। मैं तो केवल यह कह रहा हूं कि जब तक देश इस महत्वपूर्ण मामले पर अपना निर्णय नहीं दे देता तब तक के लिए इस पर विचार स्थगित कर दिया जाये। प्रधानमंत्री ने अभी स्वयं कहा है कि

[प्रो. शिब्बन लाल सक्सेना]

जब वह लन्दन में अकेले इस घोषणा पर वार्ता कर रहे थे तो उन्होंने अपने कन्धों पर भारी जिम्मेदारी का बोझ महसूस किया, परन्तु इस भावना से उन्हें एक बोझ उठाने में सहायता मिली कि वहां जाने से पूर्व उन्होंने यहां अपने सहयोगियों से परामर्श किया था। मैं समझता हूं कि यह घोषणा उन चुनावी प्रतिज्ञाओं का उल्लंघन है जो कांग्रेस पार्टी के चुनाव घोषणा-पत्र में की गई थीं और जिनके आधार पर इस सदन के अधिकांश सदस्य चुने गये थे और इस कारण यह सदन इस घोषणा का अनुसमर्थन करने के लिए सक्षम नहीं है। मेरे संशोधन में वही कुछ है जिसकी शिक्षा मेरे नेता प्रधानमंत्री ने जीवन भर हमें दी है। मैं 19 मार्च, 1937 को दिल्ली में हुए अखिल भारतीय सम्मेलन में उनके द्वारा दिये गये भाषण में से उद्धृत करूंगा जहां कांग्रेस टिकट पर चुने गये सभी विधायक एकत्रित हुए थे और जहां उन्होंने हमें चुनाव घोषणा-पत्र की याद दिलाई थी। तब उन्होंने कहा था:

> ''मैं चाहूंगा कि वे उस चुनाव घोषणा-पत्र को और कांग्रेस के उन संकल्पों को याद रखें जिनके आधार पर उन्होंने लोगों के मताधिकार की मांग की थी। यह बात हम में से कोई न भूले कि हम विधान मण्डलों में इसलिए नहीं आये हैं कि हम ब्रिटिश साम्राज्यवाद के साथ किसी भी तरह सहयोग करें बल्कि इसलिए आये हैं कि हम संघर्ष करें और इस अधिनियम को समाप्त करें जो हमें गुलाम बनाता है और हम पर बन्धन लगाता है। हम में से कोई भी यह न भूले कि हम स्वाधीनता के लिए लड़ रहे हैं।
>
> यह स्वाधीनता क्या है? एक स्पष्ट, निश्चित, गूंजता हुआ शब्द जिसे दुनियां के सभी लोग समझते हैं, जिसमें संदिग्धता की कोई सम्भावना नहीं है और फिर भी हमारा दुर्भाग्य है कि इस शब्द के भी मतलब निकाले गये हैं और गलत मतलब निकाले गये हैं। आइये इसे हम स्पष्ट करें। स्वाधीनता का अर्थ है पूरी तरह से राष्ट्रीय स्वतंत्रता, इसका अर्थ है, जैसाकि हमारी प्रतिज्ञा में कहा गया है, ब्रिटेन के साथ सम्बन्ध तोड़ लेना। इसका अर्थ है साम्राज्यवाद का विरोध और साम्राज्यवाद के साथ कोई समझौता न करना। शब्द हम पर फेंके जाते हैं–अधिराज्य (डोमिनियन) का दर्जा, वैस्टमिन्स्टर का कानून, ब्रिटिश राष्ट्रमण्डल और हम उन के अर्थ जानने के लिए बाल की खाल निकालते रहते हैं। मुझे कहीं भी वास्तविक राष्ट्रमण्डल दिखाई नहीं देता, मैं तो केवल यह देखता हूं कि एक साम्राज्य है जो भारत के

लोगों का शोषण कर रहा है और जो दुनियां के विभिन्न भागों में अनेक अन्य लोगों का शोषण कर रहा है। मैं चाहता हूं कि एशिया और अफ्रीका में शोषण के इस इतने बड़े यंत्र के साथ हमारे देश का कोई सरोकार न रहे। यदि यह यंत्र नहीं रहेगा तो हमारे दिल में इंग्लैंड के लिए सद्भावना ही सद्भावना रह जायेगी और हर हालत में हम ब्रिटिश जनसाधारण के साथ मित्रता चाहते हैं।

''अधिराज्य का दर्जा'' (डोमिनियन स्टेट्स) ऐसा नाम है जो विचित्र परिस्थितियों में इस्तेमाल में आया और समय के साथ-साथ इसके महत्व में तब्दीली होती गयी। ब्रिटिश राष्ट्रों के ग्रुप में इसका अर्थ था एक यूरोपीय प्रभुत्व वाला ग्रुप जो अपने अधीनस्थ विभिन्न देशों का शोषण करता था। उस यूरोपीय प्रभुत्व वाले ग्रुप के सदस्यों के परस्पर सम्बन्धों में वैस्टमिन्स्टर कानून द्वारा चाहे जो भी तब्दीली आयी हो परन्तु इसका वह स्वरूप अभी भी कायम है। वह ग्रुप ब्रिटिश साम्राज्यवाद का प्रतिनिधित्व करता है और आज विश्व में यह उन्हीं प्रतिक्रियावादी ताकतों का प्रतीक है जिनके विरुद्ध हम संघर्ष कर रहे हैं। अतः हम इस व्यवस्था और इन ताकतों के साथ स्वेच्छा से सम्बन्ध कैसे रख सकते हैं? या फिर क्या यह धारणा है कि समय के साथ-साथ यदि हम अपना व्यवहार ठीक रखते हैं तो अधीनस्थ ग्रुप से हमारी पदोन्नति प्रभुत्व वाले ग्रुप में हो सकती है और इस पर भी यह साम्राज्यवादी ढांचा और इस सबका आधार लगभग वैसा ही रहेगा जैसा अब है? यह एक निरर्थक धारणा है जिसका वास्तविकता के साथ कोई सम्बन्ध नहीं है और यदि सम्भव हो भी तो भी हमें इसका भागी नहीं बनना चाहिए, क्योंकि तब हम साम्राज्यवाद में और अन्यों के शोषण में भागीदार बन जाते हैं और इन अन्यों में अधिकांश लोग शायद हमारे अपने लोग ही होंगे।

यह कहा जाता है और मेरा विश्वास है कि गांधी जी का यह विचार है, कि यदि हम राष्ट्रीय स्वतंत्रता प्राप्त कर लेते हैं तो इसका अर्थ होगा ब्रिटिश साम्राज्यवाद ही समाप्त हो जायेगा। इन परिस्थितियों में कोई कारण नहीं है कि हम ब्रिटेन के साथ अपने सम्बन्ध क्यों न बनाये रखें। इस तर्क में बल है क्योंकि हमारी लड़ाई ब्रिटेन के साथ या ब्रिटेन के लोगों के साथ नहीं है बल्कि ब्रिटिश साम्राज्यवाद के साथ है। परन्तु जब हम इस तरह से सोचते हैं तो एक विशाल और भिन्न

[प्रो. शिब्बन लाल सक्सेना]

विश्व हमारी नजर में आता है और अधिराज्य का दर्जा (डोमिनियन स्टेट्स) और वैस्टमिन्स्टर कानून वर्तमान में न रहकर इतिहास का अंग बन जाते हैं। उस वृहत् जगत में ब्रिटिश राष्ट्र ग्रुप का कोई स्थान नहीं है, बल्कि वहां राजनीतिक एवं सामाजिक स्वतंत्रता पर आधारित विश्व ग्रुप का स्थान है।''

***अध्यक्ष:** क्या माननीय सदस्य सारा भाषण पढ़कर सुनायेंगे?

***प्रो. शिब्बन लाल सक्सेना:** जी नहीं, केवल एक और पैरा पढ़कर सुनाऊंगा।

''अत: अधिराज्य के दर्जे (डोमिनियन स्टेट्स) की उसके व्यापक महत्व की दृष्टि से जिसमें अलग होने का अधिकार भी शामिल है, बात करने का अर्थ है स्वयं को एक ग्रुप के दायरे में सीमित करना जो आवश्यक रूप से अन्य ग्रुपों का विरोध करेगा और अन्य ग्रुप उसका विरोध करेंगे और जो निश्चित रूप से धीरे-धीरे समाप्त हो रही मौजूदा सामाजिक व्यवस्था पर आधारित होगा। इसलिए हम किसी भी शक्ल या सूरत में इस अधिराज्य के दर्जे की बात को स्वीकार नहीं कर सकते, हम स्वतंत्रता चाहते हैं, न कि कोई विशेष दर्जा। इस वाक्यांश की आड़ में, साम्राज्यवाद के हाथ फैलेंगे और हमें अपने शिकंजे में रखेंगे, चाहे इसका बाहरी रूप देखने में कितना ही अच्छा क्यों न हो।

और इसलिए हमारी प्रतिज्ञा कायम रहेगी और हमें ब्रिटेन से अपने सम्बन्ध तोड़ने के लिए परिश्रम करना ही होगा। मगर हम एक बार फिर दोहरा दें कि हम अलग-थलग रहने की या आक्रामक राष्ट्रवाद की, जैसाकि मध्य यूरोपीय देशों में आज इस शब्द को समझा जाता है, किसी नीति के हामी नहीं हैं। हमें आशा है कि हम इंग्लैंड समेत, यदि वह अपनी साम्राज्यवाद की नीति छोड़ देता है तो सभी प्रगतिशील देशों के साथ निकटतम सम्बन्ध रखेंगे।''

यह उन्होंने 1937 में कहा था। अब मैं 10 अगस्त, 1940 की घोषणा में से एक छोटा सा पैराग्राफ उद्धृत करूंगा। पंडित जी ने ''द पार्टिंग आफ द वेज़'' शीर्षक से एक

लम्बा लेख लिखा था जिसका यह अन्तिम भाग है। उन्होंने कहा था:

> ''भारत का लक्ष्य यह है—एक संगठित, स्वतंत्र, लोकतांत्रिक देश जो अन्य स्वतंत्र राष्ट्रों के विश्व संघ के नजदीकी तौर पर जुड़ा हो। हम स्वतंत्रता तो चाहते हैं, मगर पुरानी तरह की संकुचित, एकान्तिक स्वतंत्रता नहीं। हमारा विश्वास है कि अब अलग-अलग, आपस में लड़ने वाले राज्यों के दिन बीत गये हैं।''

हम स्वतंत्रता चाहते हैं, अधिराज्य (डोमिनियन) का या अन्य कोई दर्जा नहीं। प्रत्येक विचारशील व्यक्ति जानता है कि अधिराज्य के दर्जे की सारी धारणा इतिहास का हिस्सा बन चुकी है, इसका कोई भविष्य नहीं है। इस युद्ध के बाद यह धारणा बनी नहीं रह सकती, चाहे इस युद्ध का नतीजा कुछ भी हो। मगर यह रहे या न रहे, हम इसे नहीं चाहते। हम राष्ट्रों के किसी ऐसे ग्रुप में बंधकर नहीं रहना चाहते जिसने हम को दबा कर रखा है और हमारा शोषण किया है; हम उस साम्राज्य में नहीं रहेंगे जिसके कुछ हिस्सों में हमारे साथ गुलामों का सा व्यवहार किया जाता है और जहां रंगभेद का बोलबाला है। हम लन्दन नगर के वित्तीय प्रभुत्व से छुटकारा पाना चाहते हैं। हम बिना किसी सीमा के पूरी तरह स्वतंत्र होना चाहते हैं, सिवाय इसके कि हम चाहें तो अन्य देशों से मिल कर किसी राष्ट्र संघ में या किसी नई विश्व व्यवस्था में शामिल हो सकते हैं। अगर कोई ऐसी विश्व व्यवस्था या राष्ट्र संघ निकट भविष्य में नहीं बनता तो हम अपने पड़ोसी देशों, जैसे चीन, बर्मा, लंका, अफगानिस्तान, फारस के साथ एक संघ बनाकर उनसे निकट से सम्बन्ध रखना चाहेंगे। हम जोखिम लेने के लिए तैयार हैं और खतरों का सामना करने के लिए भी। हम ब्रिटिश थल सेना या नौसेना का तथाकथित संरक्षण नहीं चाहते। हम अपने लिए परिवर्तन स्वयं लायेंगे।

> ''यदि इतिहास साक्षी न होता तो वर्तमान हमें इस अन्तिम फैसले पर पहुंचने के लिए मजबूर कर देता। क्योंकि वर्तमान युद्ध और खतरे में भी ब्रिटिश साम्राज्यवाद के हाथों हमारे लोगों के साथ किये जाने वाले व्यवहार में कोई तब्दीली नहीं आई है। जो लोग इस साम्राज्यवाद का पक्ष और संरक्षण चाहते हैं। वे इसके पास जायें हम अपने रास्ते जायेंगे। अब समय आ गया है कि हमारे रास्ते अलग-अलग हों।''

महोदय, एक ऐसे संकल्प का विरोध करना बहुत ही गम्भीर बात है जो स्वयं पंडित जी जैसे महान नेता ने पेश किया हो, परन्तु मैंने महसूस किया है कि यह ऐसा अवसर है जबकि मुझे वह अवश्य कहना चाहिए जो मैं महसूस करता हूं। मैं अपने दिल

[प्रो. शिब्बन लाल सक्सेना]

की गहराइयों से महसूस करता हूं कि हम एक गलती कर रहे हैं और वह गलती उतनी ही बड़ी है जो देश के बटवारे को स्वीकार करते हुए माउंटबैटन योजना को स्वीकार करते समय की गई थी। इतिहास में ऐसे अवसर आते हैं जब लोगों को परिणामों पर ध्यान दिये बिना वह अवश्य कह देना चाहिए जो वे महसूस करते हों। मैं समझता हूं कि यह संशोधन जो मैंने आपके सामने रखा है इस पर शांति एवं धैर्य से विचार किया जाना चाहिए।

महोदय, जब से हमारे नेता ने 27 अप्रैल को इस घोषणा पर हस्ताक्षर किये तब से जो भी भाषण उन्होंने पार्टी की बैठकों में दिये हैं और सार्वजनिक सभाओं में दिये हैं वे सब मैंने ध्यान से सुने हैं और जो भी उनकी वार्ता रेडियों से प्रसारित हुई है यह भी मैंने ध्यान से सुनी है और उनका अध्ययन किया है। मैंने वे सब टिप्पणियां भी पढ़ी हैं जो इस घोषणा पर समाचार-पत्रों में प्रकाशित हुई हैं। सरदार जी के इस पर जो विचार हैं वे भी मैंने पढ़े हैं। मैंने बड़ी गम्भीरता से सोचा है कि क्या इससे हमें अपने देश के लिए कुछ लाभ हो रहा है, परन्तु मैं समझता हूं कि इससे होने वाली हानियों की अपेक्षा लाभ इतना कम हो रहा है कि घोषणा का अनुसमर्थन करना घातक सिद्ध होगा।

हमारे नेता ने अभी-अभी हमें बताया है कि मेरे जैसे आलोचक बीते जमाने में रह रहे हैं, कि वे वर्तमान में नहीं रह रहे हैं और यह कि वे आने वाले समय को नहीं देख सकते। यह आरोप उन्होंने कुछ उन नेताओं पर लगाया जिनका हम और वह भी बड़ा सम्मान करते हैं और मैंने इस पर बड़े धैर्य से विचार किया है। मैंने वही अंश उद्धृत करने का प्रयास किया है जो विगत काल से सम्बन्ध रखते हैं और वर्तमान के लिए वे सही नहीं है। परन्तु मैं समझता हूं कि उनसे ऐसे सिद्धान्तों का प्रतिपादन होता है जो बदलते नहीं हैं और मैं यह भी समझता हूं कि वर्तमान में कोई तबदीली नहीं आई है। जैसे ही प्रधानमंत्री ने इस घोषणा पर हस्ताक्षर किये उसी समय मलाया के मजदूर संघों के बहादुर भारतीय नेता गणपति को फांसी दे दी गई और आज जब हम इस संकल्प को पास करने जा रहे हैं तो मलाया में एक अन्य बहादुर भारतीय साम्बशिवम् को या तो आज सुबह फांसी पर चढ़ा दिया होगा या फिर शायद आज किसी भी समय फांसी पर चढ़ा दिया जायेगा। मैं समझता हूं कि ब्रिटिश साम्राज्यवाद अपने ही रास्ते पर चल

रहा है और वह अपने रास्ते से हटेगा नहीं, भले ही हम उसे फुसलाने की या जीतने की कितनी ही कोशिश क्यों न करें। उसका अपना उद्देश्य है। मुझे आश्चर्य होता है कि हमारे प्रधानमंत्री, जिनके आदर्शवाद के लिए विश्व भर के लोग उनका सम्मान करते हैं, कभी-कभी इन साधारण बातों को भूल जाते हैं। आप देखें कि दक्षिण अफ्रीका में क्या हो रहा है जहां भारतीय लोगों का शत्रु के समान पीछा किया जाता है। हम विगत काल को तो भूल सकते हैं परन्तु क्या हम वर्तमान से भी अपनी आंखें मूंद सकते हैं? यह सही है कि बड़े-बड़े मामलों के विषय में निर्णय लेते समय हमें भावनाओं को आड़े नहीं आने देना चाहिए। और यद्यपि सारा देश भावनात्मक रूप से इस घोषणा का अनुसमर्थन किये जाने के विरुद्ध है, तथापि अब मैं इसे इन ठोस लाभों की दृष्टि से देखूंगा जिनके बारे में हमें बताया जा रहा है कि वे इससे हमें प्राप्त होंगे। जहां तक मेरा अपना सवाल है, मुझे इससे कोई लाभ होता दिखाई नहीं देता। मान लीजिये हम राष्ट्रमण्डल से अपने सम्बन्ध तोड़ लेते हैं, मान लीजिये हम कहते हैं कि हम स्वतंत्र गणराज्य हैं और एक गणराज्य का राजतंत्र से कदापि मेल नहीं होता, तब क्या होगा? हो सकता है कि आरम्भ में कुछ कठिनाइयां हों, परन्तु क्या हमने यह प्रतिज्ञा नहीं की है कि स्वतंत्रता की आनुषंगिक सभी कठिनाइयों का हम सामना करेंगे और उन पर विजय पायेंगे? अतः इन अस्थायी कठिनाइयों पर काबू पाना होगा। परन्तु हमारे महान राष्ट्र को इंग्लैंड जैसे छोटे से देश के साथ सदा के लिए कदापि बंधे नहीं रहना चाहिए। महोदय, मैं समझता हूं कि जब भारत राष्ट्रमण्डल के साथ अपने सम्बन्ध तोड़ लेगा तो उसे विश्व में वह सम्मान मिलने लगेगा जिसका कि कोई पूर्णतया स्वतंत्र राष्ट्र पात्र है और जब संसार यह जानेगा कि भारत वास्तव में किसी गुट से जुड़ा हुआ नहीं है तो विश्व में उसके प्रति विश्वास की भावना पैदा होगी। राष्ट्रमण्डल के साथ अपने आपको जोड़कर निश्चय ही हम एक शक्ति गुट में शामिल हो जायेंगे। हम इस तथ्य से इन्कार नहीं कर सकते। हम आंग्ल-अमरीकी शक्ति गुट में शामिल हो रहे हैं। हम कोई भी ऐसा निर्णय नहीं ले सकते जो इस शक्ति गुट के निर्णय के विरुद्ध हो।

***पं. बालकृष्ण शर्माः** क्या मैं जान सकता हूं कि क्या माननीय सदस्य को यह ज्ञात है कि राष्ट्रमण्डल के सदस्यों में भी संयुक्त राष्ट्र संघ में अंतर्राष्ट्रीय प्रश्नों पर मतभेद हो जाते हैं?

***प्रो. शिब्बन लाल सक्सेना:** मैं अच्छी तरह जानता हूं कि उनमें मतभेद हो जाते हैं, परन्तु वे मतभेद अनावश्यक बातों पर ही होते हैं। परन्तु मेरा कहना यह है कि राष्ट्रमण्डल में शामिल होकर हमें बड़े-बड़े प्रश्नों पर उनका साथ ही देना पड़ेगा। हम तब तक उनका विरोध नहीं कर सकते जब तक कि हम उनसे सम्बन्ध तोड़ना नहीं चाहते हों। अत: राष्ट्रमण्डल में रहकर हमें उनके पीछे चलना पड़ेगा और उस सीमा तक हमारी स्वतंत्रता सीमित हो जायेगी। सोवियत संघ पहले ही समझता है कि हम आंग्ल-अमरीकी शक्ति गुट में शामिल हो गये हैं। मास्को के सोमवार के ''प्रावदा'' के अंक में पर्यवेक्षक एम. मारिनिन ने 30 अप्रैल को लिखते हुए घोषणा की है कि ''संवैधानिक रूपों में चाहे कितने ही परिवर्तन कर दिये जायें, एक नया सैनिक राजनीतिक आधार आरम्भ किये जाने के सिवाय, ब्रिटेन और भारत के बीच सम्बन्धों में कोई परिवर्तन नहीं आया। एक गणराज्य के रूप में भारत के इस उन्नयन का उपयोग इस गणराज्य को ''दक्षिण-पूर्वी एशिया में आंग्ल-अमरीकी शक्ति'' के रूप में बदलने हेतु ब्रिटिश और भारतीय नेताओं के बीच एक नया सौदा करने के लिए किया जा रहा है। ''ब्रिटिश पर्यवेक्षक समझते हैं कि भारत 'एशिया की कुंजी है' जो वर्तमान शीत युद्ध में पूर्वी मोर्चा है'' और स्वाभाविक है कि संयुक्त राज्य अमरीका और ब्रिटेन इस कुंजी को हथियाना चाहते हैं। इसी प्रयोजन से वे ऋणों द्वारा और स्पष्ट धमकी देकर आर्थिक दबाव डाल रहे हैं।

> ''लन्दन-सम्मेलन का मूल उद्देश्य लेबर सरकार की यह इच्छा है कि डोमिनियनों को दूरगामी सैनिक दायित्वों की एक नयी कड़ी में बांधा जाये और उन्हें आंग्ल-अमरीकी गुट की आक्रामक नीति व्यवस्था में शामिल किया जाये और इस प्रकार उन अपकेन्द्री शक्तियों के कार्य को कमजोर करने का प्रयास किया जाये जो अब ब्रिटिश साम्राज्य को नष्ट कर रही हैं।''

महोदय, साम्यवादी चीन ने भी घोषणा की है कि इस घोषणा पर हस्ताक्षर करके हमारा देश आंग्ल-अमरीकी शक्ति गुट में शामिल हो गया है। हमने सदैव आशा की थी और कल्पना की थी कि भारत और चीन मिलकर काम करेंगे। वह आशा अब छिन्न-भिन्न हो गई है। हिन्द-चीन, श्याम, मलाया और बर्मा पहले से ही साम्यवाद के प्रभाव में हैं। तो फिर भारत द्वारा एशिया का नेतृत्व करने की बात का क्या हुआ? एशिया का एक-तिहाई भाग सोवियत संघ का हिस्सा है। एशिया के अन्य एक-तिहाई भाग में चीन देश है और वह साम्यवाद को ग्रहण कर रहा है। एशिया के शेष एक-तिहाई भाग में भारत और पाकिस्तान हैं और कुछ मध्य पूर्व के देश हैं जो अभी साम्यवाद के बहाव से अछूते हैं। राष्ट्रमण्डल

में शामिल होकर, भारत एशिया के इस अधिकांश भाग का, जो साम्यवाद के प्रभाव में है, शत्रु बन जायेगा। अतः राष्ट्रमण्डल का सदस्य बन जाने पर हमारे द्वारा एशिया के नेतृत्व की सम्भावना भी समाप्त हो जायेगी। यदि हम राष्ट्रमण्डल से सम्बन्ध विच्छेद कर लेते हैं और सही अर्थों में असम्बद्ध होकर रहते हैं तो रूस और साम्यवादी प्रभाव वाले अन्य देश भी हमारा सम्मान करेंगे और फिर आंग्ल-अमरीकी गुट के देश भी हमारी मित्रता चाहेंगे।

राष्ट्रमण्डल में शामिल होने से हम विश्व के सभी देशों के साथ सौदा करने की अपनी शक्ति खो देंगे। कठिन संघर्ष से प्राप्त हमारी स्वतंत्रता बिक जायेगी और उसके बदले में हमें तनिक सा भी लाभ नहीं होगा। वास्तव में रूस के विरुद्ध अपनी लड़ाई में भारत आंग्ल-अमरीकी साम्राज्यवाद का अन्तिम गढ़ बन जायेगा। अब तक चीन पूर्व में सोवियत प्रभाव का सीमान्त रहा है और क्योमिनतांग के पीछे साम्यवाद से लड़ने वाले अमरीकी बलों की युद्ध भूमि रहा है। अब चीन अमरीका के हाथ से निकल गया है। अतः नयी युद्ध भूमि बनाने के लिए भारत सबसे अधिक उपयुक्त है जहां से आंग्ल-अमरीकी बल साम्यवाद के बढ़ते प्रभाव से लड़ सकते हैं। अतः राष्ट्रमण्डल में शामिल होकर हम रूस के विरुद्ध आंग्ल-अमरीका की ओर से तीसरे महायुद्ध में शामिल हो रहे हैं। इसी कारण मैं इस प्रस्ताव का इतना घोर विरोध कर रहा हूं और चाहता हूं कि मेरा संशोधन स्वीकार कर लिया जाये।

महोदय, मैं आचार्य नरेन्द्र देव के इस विचार से सहमत हूं कि रूस युद्ध नहीं चाहता और यदि हम कह देते हैं कि इस राष्ट्रमण्डल में शामिल नहीं होंगे तो विश्व शांति को बढ़ावा देने और विश्व शांति बनाये रखने के लिए हम कहीं अधिक बेहतर स्थिति में होंगे। मैंने वही कहा है जो मैं ईमानदारी से महसूस करता हूं। मैं समझता हूं कि यदि मैं ऐसा नहीं कहता तो मैंने अपने कर्तव्य का पालन नहीं किया होता। 26 जनवरी, 1931 से मैं स्वतंत्रता की प्रतिज्ञा करता रहा हूं—हमारे नेता ने उसका उल्लेख किया है—और उस प्रतिज्ञा में कहा गया है कि इस ब्रिटिश साम्राज्य ने आर्थिक दृष्टि से, राजनीतिक दृष्टि से और आध्यात्मिक दृष्टि से भारत का नाश कर दिया है और इसलिए हमारी स्वतंत्रता के लिए ब्रिटेन के साथ सम्बन्ध तोड़ना नितान्त आवश्यक है। अतः मैं समझता हूं कि ऐसा व्यक्ति होने के नाते जिसने यह प्रतिज्ञा ली है मैं साफ हृदय से इस प्रस्ताव का समर्थन नहीं कर सकता इसलिए मैं चाहता हूं कि मेरा यह संशोधन स्वीकार किया जाये

[प्रो. शिब्बन लाल सक्सेना]

और इस प्रश्न पर निर्णय स्थगित कर दिया जाये और देश से इस महत्वपूर्ण प्रश्न पर निर्णय लेने के लिए कहा जाये।

श्री लक्ष्मीनारायण साहू (उड़ीसा : जनरल): अध्यक्ष महोदय, मेरा प्रस्ताव केवल यही है कि पंडित जवाहरलाल नेहरू द्वारा प्रस्तुत किए गए संकल्प में निम्नलिखित जोड़ दिया जाए:

> ''Provided the Commonwealth does not allow discrimination of Indians in South Africa and Australia and also metes out equal justice to all the component units of Commonwealth in social and economic matters.''
>
> ['' परन्तु यह कि राष्ट्रमण्डल दक्षिण अफ्रीका तथा आस्ट्रेलिया में भारतीयों के साथ भेदभाव न बरते जाने दे तथा सामाजिक एवं आर्थिक मामलों में राष्ट्रमण्डल के सभी सदस्य देशों के साथ समान रूप से न्याय करे।'']

यह प्रस्ताव पेश करते हुए मैं पहले ही कुछ आशंका महसूस कर रहा हूं, क्योंकि पंडित नेहरू ने अभी-अभी हमें बताया है कि जिस बात पर अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलन में निर्णय हो चुका है उसमें परिवर्तन करना उचित नहीं होगा। अत: मैं उनका ध्यान इस बात की ओर दिलाना चाहता हूं कि मैंने जो परन्तुक प्रस्तुत किया है, उससे अन्तर्राष्ट्रीय निर्णय के अर्थ में कोई तब्दीली नहीं आती। परन्तु मैं इस परन्तुक को इसलिए जोड़ना चाहता हूं ताकि वे संदेह दूर हो सकें जोकि हमारे मस्तिष्क में पैदा हो चुके हैं।

सर्वप्रथम मैं यह कहना चाहता हूं कि जिस सोसाइटी से मैं सम्बन्धित हूं अर्थात् सर्वेन्ट्स आफ इण्डिया सोसाइटी, उसका सदैव यह दृष्टिकोण रहा है कि भारत तथा ब्रिटेन में पारस्परिक सम्बन्धों का कारण कोई गूढ़ रहस्य है। जहां तक मेरा विचार है, मैं यह समझता हूं कि इसका कारण ईश्वरीय है तथा अध्यक्ष महोदय, इस विचार से मैं यह कहना चाहता हूं कि पहले जो उग्र स्वभाव वाले थे वे अब नरमपन्थी बन गए हैं। परन्तु पंडित नेहरू के, जो कि अभी हाल तक कठोर दृष्टिकोण वाले हुआ करते थे, विचारों में जो परिवर्तन आया है उसके बारे में मेरे तथा अनेक अन्य लोगों के मस्तिष्क में संशय है। अभी-अभी प्रस्तुत किए गए संकल्प के बारे में जब मैं सोचता हूं तो मुझे ''फूल सभा'' के नाम से पुकारे जाने वाले एक समारोह की याद आती है जो कि विवाहोत्सवों के समय मनाया

जाता है। इस ''फूल सभा'' में सभी लोग अच्छी-अच्छी चीजों के बारे में बातें करते हैं और सभी हर्षोल्लास में खो जाते हैं। मेरा विचार है कि हाल ही का राष्ट्रमण्डल सम्मेलन उस ''फूल सभा'' की भांति था। मैं चाहता हूं कि संविधान सभा पहले संविधान को पूरा कर ले और उसके पश्चात् हम डोमिनियन स्टेट्स से एक दिन के लिए बाहर निकलें और अगले दिन हम फिर इसमें शामिल हो जायें। यदि ऐसा होता है तो हम यह मान सकते हैं कि हमने स्वतंत्रता प्राप्त कर ली है तथा बाद में हम अपनी इच्छा से राष्ट्रमण्डल में शामिल हो सकते हैं। हमें यह प्रतीत होता है कि हम अनजाने में उस जाल के फन्दों में फंस गए हैं जो कि अंग्रेजों ने इतनी चालाकी से तथा इतने गुप्त रूप से हमारे लिए बिछाया है। कभी-कभी इस प्रकार का सन्देह हमारे मनों में पैदा हो ही जाता है। मेरा अपना भय यह है कि ऐसा इसलिए किया गया है कि संयुक्त भारत का जो स्वरूप हमारे सामने रहा है उसे टुकड़े-टुकड़े कर दिया जाए। लार्ड कर्जन जिस समय वाइसराय थे, उस दौरान यह पहली बार हुआ जबकि बंगाल को दो खण्डों में विभाजित करने का निर्णय लिया गया। उस विभाजन के कारण वास्तविक भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन की शुरुआत हुई। इससे बहुत समय पश्चात् बर्मा हमसे अलग कर दिया गया। बर्मा जो कि हमारे देश का अभिन्न अंग था। इसके अलावा हमने स्वयं भारत का ही विभाजन उस समय देखा जबकि अंग्रेज भारत को स्वराज देने के लिए मजबूर हो गए। एक तरह से यह विभाजन इसलिए हुआ कि स्वराज के लिए हमारी तीव्र उत्सुकता का लाभ उठाया गया। देश का दो भागों में बंटवारा हो गया तथा इस विभाजन के परिणामस्वरूप लाखों लोग तबाह हुए। मेरा विचार है कि जो स्वतंत्रता हमने प्राप्त की है उसके बारे में अभी कुछ ही लोग सचेत हुए होंगे। परन्तु आम लोगों के, जिन्हें कि हम जनसमूह की संज्ञा देते हैं, जीवन को स्वतंत्रता के आगमन ने तनिक भी प्रभावित नहीं किया है।

अध्यक्ष: क्षमा करें। क्या आप संशोधन पर बोल रहे हैं अथवा किसी अन्य विषय, पर?

श्री लक्ष्मीनारायण साहू: मेरा संशोधन इस प्रकार है:

> ''Provided the Commonwealth does not allow discrimination of Indians in South Africa and Australia and also metes out equal justice to all the component units of Commonwealth in social and economic matters.''

[''परन्तु यह कि राष्ट्रमण्डल दक्षिण अफ्रीका तथा आस्ट्रेलिया में भारतीयों के साथ

[श्री लक्ष्मीनारायण साहू]

भेदभाव न बरते जाने दे तथा सामाजिक एवं आर्थिक मामलों में राष्ट्रमण्डल के सभी देशों के साथ समान रूप से न्याय करें।'']

अध्यक्षः यह मुझे मालूम है।

श्री लक्ष्मीनारायण साहूः मैं चाहता हूं न्याय समान रूप से हो। जब हम राष्ट्रमण्डल में रहते हैं, तो मैं अवश्य यह कहूंगा कि हमें समान न्याय मिलना चाहिए। यदि हमें समान न्याय नहीं मिलता तो ''फूल सभा'' में रहने का क्या लाभ है? फूल सभा विवाहों के दौरान आयोजित होती है तथा लोग पान चबाते हैं और आनन्द लेते हैं। यह कहा गया है कि स्वाधीनता प्राप्ति के पश्चात् हमें बहुत सम्मान मिला है, परन्तु मुझे समझ में नहीं आता कि किस प्रकार हमें बहुत सम्मान मिला है। मैं नहीं चाहता कि हम औरों से ऊंचे बन जाएं तथा अन्य लोग नीचे की ओर जाएं, परन्तु मैं इतना अवश्य चाहता हूं कि हमारे साथ बराबर का न्याय होना चाहिए। जब तक ऐसा नहीं होता, हमें कोई भी लाभ मिलने वाला नहीं है। हमें अफ्रीका में नागरिक अधिकार प्राप्त नहीं है, हम भूमि नहीं खरीद सकते, वहां वर्ण भेद विद्यमान है। पाकिस्तान भी, जोकि कुछ दिनों पहले तक हमारे साथ था, बल्कि हमारा ही था, राष्ट्रमण्डल में शामिल हो गया है। हम जानते हैं कि कश्मीर के मामले में हमारे साथ कैसा व्यवहार किया गया है। हमें मालूम है कि हम संयुक्त राष्ट्र संघ में शामिल हुए परन्तु उससे हमें कुछ भी लाभ नहीं हुआ। वह एक बहुत बड़ा संगठन है। राष्ट्रमण्डल तुलनात्मक रूप में एक छोटा संगठन है। यदि हमें इससे कुछ लाभ प्राप्त होता है तो मैं कह सकता हूं कि हमें स्वतंत्रता मिली है। मैं केवल यही चाहता हूं कि हम राष्ट्रमण्डल में रहें तो हम यह मांग अवश्य करें कि हमारे साथ कहीं भी किसी भी प्रकार का दुर्व्यवहार न हो। जब राष्ट्रमण्डल में कोई ऐसी व्यवस्था नहीं है जोकि दक्षिण अफ्रीका को ठीक व्यवहार करने के लिए विवश कर सके तो मुझे ऐसा कोई कारण नहीं दिखता कि हम राष्ट्रमण्डल में रहें। हमें ऐसी व्यवस्था कायम करने का प्रयास करना चाहिए और यह बात वहां बार-बार उठानी चाहिए, अन्यथा इससे कोई भी लाभ नहीं होगा।

अध्यक्ष महोदय, समय की कमी के कारण मैं विस्तार में नहीं जाना चाहता, परन्तु मैं यह जानना चाहूंगा कि क्या हम राष्ट्रमण्डल में इसलिए शामिल हुए हैं क्योंकि इंग्लैंड ऐसा चाहता था अथवा इसलिए कि हमारी यह इच्छा थी। मेरे विचार में इंग्लैंड ऐसा बहुत

समय से चाहता था तथा वर्ष 1944 से मि. चर्चिल भी ऐसा ही चाहते थे। 1994 में उन्होंने अपने भाषण में कहा था:

> ''विमान परिवहन के बड़े पैमाने पर विकास के मेल-मिलाप के नए सम्बन्ध पैदा हुए हैं तथा आपस में मिलने के लिए नई सुविधाएं उपलब्ध हुई हैं और जब युद्ध समाप्त हो जाएगा तथा वायु सेवा की सुविधा को विनाश के अत्यन्त भयावह स्वरूप से शान्ति की महिमा की ओर मोड़ा जाएगा तो ब्रिटिश राष्ट्रमण्डल की परिषदों की एकता इतनी मजबूत हो जाएगी जितनी कि पहले कभी सम्भव नहीं थी।
>
> जब शान्ति पुनः स्थापित होगी और हमें परमात्मा से प्रार्थना करनी चाहिए कि वह शीघ्र हो, तो हम आशा करते हैं कि डोमिनियनों के, जिनमें कि हमारा विश्वास है भारत की संगणना होगी और जिसके साथ कि उपनिवेशों (कालोनीज) को भी सम्बद्ध किया जाएगा, प्रधानमंत्रियों के सम्मेलन बारम्बार हुआ करेंगे और प्रत्येक वर्ष नियमित रूप से आनन्दोत्सवों के रूप में हमारे जीवन का अंग बनेंगे।''

मैं यह चाहूंगा कि वर्षानुवर्ष आनन्दोत्सवों के रूप में हमारे जीवन का अंग बनने के बजाए ये सम्मेलन हमारे लिए कुछ लाभदायक सिद्ध हों और हमें अपने उचित अधिकार मिलें। जब तक कि हम ऐसा वातावरण पैदा नहीं कर लेते, राष्ट्रमण्डल में रहने अथवा इससे बाहर रहने में कोई अन्तर नहीं होगा। ऐसा प्रतीत होता है कि हम रूस के आगमन से भयभीत हैं। अब तक तो हम यही कहते रहते हैं कि हम संयुक्त राष्ट्र संघ के किसी गुट में शामिल नहीं होंगे और इस प्रश्न को लेकर हमने भावपूर्ण चर्चाएं की हैं, परन्तु आज ऐसा निर्णय लिया गया प्रतीत होता है कि हम रूस के विरुद्ध हैं तथा आंग्ल-अमरीकी गुट के पक्ष में हैं। इसमें कोई संदेह नहीं किया जा सकता। जो भी हो, मैं न तो रूस का समर्थक हूं और न आंग्ल-अमरीकी गुट का ही समर्थक हूं। मैं चाहता हूं कि हमारे देश के साथ अन्य देशों जैसा व्यवहार हो, परन्तु अंग्रेजों की नीति से हमें पाकिस्तान देना पड़ा, हमने लंका तक भी खो दी, जो कि हमारे पास श्री रामचन्द्र के युग से थी और हमने बर्मा भी खो दिया। यही मेरा संशोधन है और इसमें कही गई बात को प्राप्त करने के लिए मैंने इसे प्रस्तुत किया है। मैं और अधिक कुछ नहीं कहना चाहता परन्तु मैं यह चाहता हूं कि हमारे प्रधानमंत्री यह बात निश्चय ही ध्यान में रखें कि अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलनों

[श्री लक्ष्मीनारायण साहू]

में भाग लेने वाला हमारा प्रतिनिधि आनन्दोत्सवों तथा प्रीति-भोजों के बहकावे में न आ जाए, अपितु वह हमारे देश का सम्मान बढ़ाने का प्रयत्न करे।

***श्री एच.वी. कामत** (मध्यप्रान्त और बरार : जनरल): अध्यक्ष महोदय, संशोधनों की दूसरी अनुपूरक सूची के संदर्भ में मैं, संशोधन संख्या 1, 2 तथा 3 प्रस्तुत नहीं कर रहा हूं। जहां तक संशोधन संख्या 4 का सम्बन्ध है, मैंने देखा है कि श्री साहू का संशोधन इसी प्रकार का है। अत: मैं यह संशोधन भी प्रस्तुत नहीं कर रहा हूं, परन्तु अध्यक्ष महोदय, मैं आपकी अनुमति से इस प्रस्ताव पर बोलना चाहूंगा।

***अध्यक्ष:** क्योंकि और संशोधन नहीं है, अत: श्री कामत चर्चा जारी रख सकते हैं।

***श्री एच.वी. कामत:** अध्यक्ष महोदय, आरम्भ में मैं माननीय श्री जवाहरलाल नेहरू को बधाई देना चाहता हूं कि उन्होंने गत एक महीने के दौरान या यूं कहिए कि गत एक वर्ष या उससे अधिक के दौरान अपनी शारीरिक तथा मानसिक शक्ति का इस सीमा तक विस्तार किया जिसके परिणामस्वरूप कि लन्दन निर्णय ने वास्तविक रूप लिया तथा वह प्रकाश में आया। इस सम्मेलन में उनकी सफलताओं का उल्लेख तथा उनकी आलोचना विभिन्न लोगों द्वारा विभिन्न तरीकों से की गई है। मेरे विचार में इस उपलब्धि की सच्चाई अथवा गुणवत्ता उन दोनों उल्लेखों के बीच है जो कि एक ओर तो सरदार वल्लभभाई पटेल द्वारा किया गया है, अर्थात् कि यह लगभग व्यक्तिगत सफलता है तथा दूसरी ओर कांग्रेस अध्यक्ष डा. पट्टाभि सीतारमय्या द्वारा किया गया है कि इसमें कुछ भी नई बात नहीं है। इस सफलता की सच्चाई अथवा वास्तविकता लन्दन सम्मेलन के बारे में इन दो मतों अथवा दृष्टिकोणों के कहीं बीच में है।

इस प्रस्ताव में जिस घोषणा का उल्लेख किया गया है, उसके तीन ठोस पहलू हैं। प्रथम, यदि हम पैरा 1 को तथा बाद वाले पैराग्राफों को देखें तो पता चलता है कि पैरा 1 में राष्ट्रमण्डल का उल्लेख ''ब्रिटिश राष्ट्रमण्डल'' के रूप में किया गया है। बाद में इसका उल्लेख केवल ''राष्ट्रमण्डल'' के रूप में ही किया गया है। इसका अर्थ यह हुआ कि इस लन्दन-निर्णय अथवा सूत्र का पहला पहलू यह है कि राष्ट्रों के समूह को दिए जाने वाले नाम से ''ब्रिटिश'' शब्द निकाल दिया गया है या उसका लोप कर दिया

गया है। दूसरे, इस सूत्र में प्रभुसत्ता सम्पन्न गणराज्य का, जो कि हम शीघ्र ही बनने जा रहे हैं, इस राष्ट्रमण्डल के साथ, जिसका प्रतीकात्मक प्रमुख सम्राट रहेगा, निरन्तर सम्बद्ध रहने अथवा उसका सदस्य बने रहने के साथ सामंजस्य स्थापित करने का निहायत बारीकी से प्रयास किया गया है, जोकि शायद किसी साधारण व्यक्ति के लिए समझना इतना सरल नहीं है।

मैं यह कहना चाहूंगा कि एक स्वतंत्र गणराज्य का राष्ट्रमण्डल के साथ, जिसका प्रमुख सम्राट है, यह सम्बन्ध राजनीतिक सिद्धान्त में एक नई घटना है। इस घोषणा का अन्तिम पहलू यह है कि यह राष्ट्रमण्डल, जिसमें कि हम पूर्ण सदस्य के रूप में शामिल हुए हैं, शांति, स्वतंत्रता तथा प्रगति के मार्ग पर चलने के लिए प्रयासरत रहेगा तथा सहयोग देगा। हमें इस घोषणा की इन्हीं तीन पहलुओं की पृष्ठभूमि में जांच करनी है जिनका कि मैंने अभी उल्लेख किया है। प्रथम पहलू का सम्बन्ध शीर्षक से है जो कि औपचारिक है, राष्ट्रों के इस समूह के नाम में मात्र एक परिवर्तन। परन्तु कुछ दिन पूर्व जब मैंने हाउस आफ कामन्स में 2 मई को मि. एटली द्वारा दिये गये एक प्रश्न के उत्तर को पढ़ा तो मैं क्षुब्ध रह गया। जिस कागज पर इस घोषणा का प्रारूप तैयार किया गया था और हस्ताक्षर हुए थे उसकी स्याही अभी मुश्किल से ही सूखी होगी कि इसके केवल पांच दिन बाद ही एक प्रश्न के उत्तर में मि. एटली ने कहा कि राष्ट्रों के इस समूह के नाम में कोई परिवर्तन नहीं हुआ है। हाउस आफ कामन्स के कंजर्वेटिव सदस्य मि. वाल्टर फलेचर को मि. एटली द्वारा दिए इस उत्तर को मैं आपकी अनुमति से शब्दशः उद्धृत करना चाहता हूं। इस घोषणा के संसार के सामने प्रख्यापित किये जाने के पांच या छः दिनों के पश्चात् प्रधानमंत्री मि. एटली ने एक संसदीय उत्तर में कहा:

> ''अन्य शब्दों अर्थात राष्ट्रमण्डल, ब्रिटिश राष्ट्रमण्डल और यहां तक कि साम्राज्य का प्रयोग अपनाने अथवा न अपनाने के बारे में कोई समझौता नहीं हुआ है...''

> ''परिभाषित शब्दावली को यदि उपयोगी कहना है तो वह, कठोर अथवा अव्यावहारिक हुए बिना राष्ट्रमण्डल, ब्रिटिश राष्ट्रमण्डल तथा साम्राज्य में होने वाली घटनाओं, सांविधानिक घटनाओं, के साथ-साथ चलती है।''

उन्होंने एक बार फिर इन तीनों, अर्थात राष्ट्रमण्डल, ब्रिटिश राष्ट्रमण्डल तथा साम्राज्य का उल्लेख किया है। ''यह मामला महामहिम की सरकार (हिज मैजेस्टी गवर्नमेंट) तथा

[श्री एच.वी. कामत]

अन्य राष्ट्रमण्डल देशों के बीच परामर्श का विषय रहा है तथा अपनाने आदि के बारे में कोई समझौता नहीं हुआ है।'' यह उनके (मि. एटली) द्वारा हाउस आफ कामन्स के एक सदस्य को दिया गया उत्तर है। ''इन शब्दों में से किसी के प्रयोग किए जाने अथवा न किए जाने के लिए कोई समझौता नहीं हुआ है और न ही यूनाइटेड किंगडम में ऐसा करने अथवा न करने के बारे में कोई निर्णय हुआ है''।

मि. फ्लेचर ने आगे पूछा कि क्या इस बात को ठीक से समझा जाता है कि ''द ब्रिटिश एम्पायर'' शब्दों को सारे साम्राज्य में अनेक लोग बहुत सम्मानजनक मानते हैं तथा क्या प्रधानमंत्री (मि. एटली) यह सुनिश्चित करेंगे कि रोजमर्रा प्रयोग करने से कहीं ये शब्द विषय से परे न हो जाएं? मि. एटली ने उत्तर दिया कि ''राष्ट्रमण्डल तथा साम्राज्य के विभिन्न भागों में विभिन्न राय है तथा यह बेहतर है कि लोगों को उन्हीं शब्दों का प्रयोग करने दिया जाए जिन्हें कि वे सर्वोत्तम समझते हैं,'' जिसका अर्थ यह हुआ कि उन्होंने कहा कि ''राष्ट्रमण्डल'' के नाम से पुकारे जाने वाले राष्ट्रों के इस समूह के उल्लेख अथवा नाम में सरकारी तौर पर कोई परिवर्तन नहीं हुआ है।

जहां तक इस परिवर्तन विशेष की विषय-वस्तु, अर्थात् घोषणा में ''ब्रिटिश'' शब्द के लोप, का सम्बन्ध है, मैं इससे तनिक भी संतुष्ट नहीं हूं। क्या ''ब्रिटिश'' शब्द का लोप किए जाने पर सहमत होकर हमने राष्ट्रमण्डल में सभी जातीय नीतियों को समाप्त कर दिया है? यदि वह ऐसा राष्ट्रमण्डल बनने जा रहा है जिसके साथ कि पूर्व तथा पश्चिम, ब्रिटिश तथा भारत एवं अन्य को भी सम्बंद्ध किया जा सकता है, तो क्या हमने गारंटी दी है अथवा स्वयं को आश्वस्त कर लिया है कि सभी गैर-अश्वेत विरोधी—मैं श्वेत समर्थक अथवा ब्रिटिश समर्थक नहीं कहूंगा—नीतियों का पूर्णतः परित्याग कर दिया गया है? मैं पंडित नेहरू से यह सुनकर बहुत प्रसन्न हुआ कि रंगभेद की नीति के विरुद्ध अथवा जातीय फासिस्टवाद के विरुद्ध हमारा संघर्ष जारी रहेगा, परन्तु अध्यक्ष महोदय, क्या मैं अत्यंत नम्रतापूर्वक यह पूछ सकता हूं कि यह मुद्दा जो कि इतना महत्वपूर्ण है, लन्दन सम्मेलन में, जहां कि मि. मलान तथा विभिन्न देशों में उनके विरोधी सदस्य उपस्थित थे, किस कारण से बिल्कुल भी नहीं उठाया गया? पंडित नेहरू अथवा किसी अन्य व्यक्ति द्वारा इसका कोई कारण नहीं बताया गया कि इस सम्मेलन में इस पर आग्रह क्यों नहीं किया गया। शायद इस मुद्दे को उठाने के विरुद्ध केवल एक ही कारण बताया गया है और वह यह है कि हम अन्य मंचों से संघर्ष कर रहे हैं और यह कि इस मामले को सम्मेलन

में उठाए जाने की कोई आवश्यकता नहीं थी। मेरे विचार में इस लन्दन सम्मेलन में राष्ट्रमण्डल के देशों के भीतर चल रही जातीय नीतियों का प्रश्न उठाने तथा उस पर चर्चा करने के लिए गम्भीर प्रयास किया जाना चाहिए था, परन्तु स्थिति यह है कि ऐसा नहीं किया गया है और हम केवल यही आशा कर सकते हैं कि दुनियां की घटनाओं से मार्गदर्शन प्राप्त करके अथवा इन घटनाओं से प्रेरित होकर यह राष्ट्रमण्डल जातिभेद नीतियों का, वास्तविक लोकतंत्रात्मक नीतियों के पक्ष में तथा वास्तविक गैर-जातिभेद नीति के पक्ष में, परित्याग कर देगा।

अध्यक्ष महोदय, इसके पश्चात् मैं इसके दूसरे पहलू पर आता हूं। एक प्रभुसत्ता सम्पन्न गणराज्य के रूप में हम इस राष्ट्रमण्डल के सदस्य बनने जा रहे हैं, एक पूर्ण सदस्य। केवल मात्र जो परिवर्तन हुआ है वह है विगत काल तथा वर्तमान में परिवर्तन। मैं कोई भविष्यवक्ता नहीं हूं और मेरे विचार से कोई भी नहीं कह सकता कि भविष्य में क्या होगा और इसलिए मैं केवल विगत काल तथा वर्तमान की ही बात कर रहा हूं। जहां तक इस पहलू का सम्बन्ध है मेरे विचार से विगत काल तथा वर्तमान में अब तक जो परिवर्तन हुआ है वह केवल यह है कि हम अब ''क्राउन'' में एक प्रकार से कोई निष्ठा नहीं रखते, परन्तु राष्ट्रों के इस समूह के प्रतीकात्मक प्रमुख रूप में ''सम्राट'' अभी कायम है। अध्यक्ष महोदय, अब मैं यह कहना चाहता हूं कि एक गणराज्य के रूप में हमारा अपना निजी प्रमुख होगा, राज्य संघ (फेडरेशन) का प्रमुख, भारतीय संघ (यूनियन आफ इंडिया) का प्रमुख हमारा प्रमुख होगा। मुझे इस घोषणा पर कोई आपत्ति नहीं होती यदि इसमें केवल यह ही कह दिया गया होता ''भारत सरकार ने भारत की इस इच्छा की घोषणा एवं पुष्टि की है कि वह राष्ट्रमण्डल का पूर्ण सदस्य बना रहेगा और इसके स्वाधीन सदस्य राष्ट्रों के स्वतंत्र सहचर्य के प्रतीक के रूप में सम्राट को मान्यता देता रहेगा''। यदि बात यहीं समाप्त हो जाती तो मुझे बहुत अधिक प्रसन्नता हुई होती परन्तु अन्त में और इस प्रकार राष्ट्रमण्डल के प्रमुख के रूप में जोड़ना वांछनीय नहीं था। अब स्थिति क्या है? हम राष्ट्रमण्डल में हैं, एक पूर्ण सदस्य के रूप में तथा एक ऐसे राष्ट्र सदस्य के रूप में नहीं जो कि घनिष्ट सहचर्य अथवा घनिष्ट सम्बन्धों के आधार पर सम्बद्ध हैं, जैसाकि अभी हाल ही में आयरलैंड ने किया है। आयरलैंड अब सदस्य नहीं रहा है और आयरलैंड गणराज्य विधेयक प्रस्तुत करते समय मि. कास्टेलो ने जो कहा था उसे मैं, पिछले सत्र में परिषद् के सदस्यों को परिचालित किए गए ज्ञापन की प्रति से उद्धृत

[श्री एच.वी. कामत]

कर रहा हूं। माननीय पंडित नेहरू ने उस सत्र के दौरान अपने भाषण में इसका उल्लेख किया था तथा उन्होंने मि. कास्टेलो के भाषण से उद्धरण दिया था।

मि. कास्टेलो ने विधेयक प्रस्तुत करते हुए कहा था:

> ''आयरलैंड की सरकार की स्थिति यह है कि आयरलैंड ब्रिटिश राष्ट्रमण्डल का सदस्य नहीं है, यदि ब्रिटिश राष्ट्रमण्डल बनाने वाले राष्ट्रों के साथ समान हितों पर आधारित परम्परागत तथा बहुत समय पहले स्थापित आर्थिक, सामाजिक तथा व्यापारिक सम्बन्धों से पैदा होने वाले विशेष घनिष्ट सम्बन्धों के अस्तित्व को मान्यता देती है तथा इसकी पुष्टि करती है।''

यह वह सूत्र है जो कि आयरलैंड ने अपनाया है। मुझे यह समझ में नहीं आता कि राष्ट्रमण्डल का पूर्ण सदस्य रहे बिना भारत के लिए भी ऐसा ही सूत्र क्यों नहीं तैयार किया जा सकता था और इस प्रकार जो कुछ भी इस राष्ट्रमण्डल के भीतर हो रहा है उसमें हम हालांकि प्रत्यक्ष रूप से नहीं परन्तु परोक्ष रूप से, सहयोग करते। पंडित नेहरू ने राष्ट्रमण्डल में हो रही बुरी बातों, बुराइयों, अनेक अवांछनीय, अप्रिय बातों का उल्लेख किया है। उन्होंने कहा था कि हम सब इसके बारे में चिन्तित हैं, ये बातें हम सबके लिए चिन्ता का विषय बनी हुई हैं, परन्तु हम इनका मुकाबला अन्य तरीके से करेंगे। महोदय, क्या हमारे लिए यह सम्भव नहीं था कि हम, जैसा कि आयरलैंड ने किया है, सभी प्रकार की सीमाओं एवं प्रतिबन्धों तथा राष्ट्रमण्डल के भीतर इसके सदस्य देशों द्वारा की जाने वाली विभिन्न वचनबद्धताओं के अध्यधीन राष्ट्रमण्डल का पूर्ण सदस्य न बने रहते हुए विशेष निकट सम्बन्ध स्थापित करते। महोदय, इस सम्बन्ध में मैं आपके तथा सभा के ध्यान में एक महत्वपूर्ण घटना लाना चाहता हूं जो कि अक्तूबर में लन्दन में राष्ट्रमण्डल प्रधानमंत्रियों के सम्मेलन में हुई। हमें, कम से कम प्रेस द्वारा तथा अन्य प्रकार से, यह बताया गया था कि किसी भी प्रकार की, न तो व्यक्त और न अव्यक्त, रक्षा-वचनबद्धताएं नहीं हैं। लन्दन सम्मेलन की समाप्ति पर जारी की गई विज्ञप्ति का एक महत्वपूर्ण पैराग्राफ मैं सभा के समक्ष इसके विचारार्थ रखना चाहता हूं। मैं एक अमरीकी समाचार पत्र से उद्धरण दे रहा हूं जिसने लन्दन सम्मेलन की, जिसमें पंडित नेहरू ने भी भारत के प्रधानमंत्री के रूप में भाग लिया था, समाप्ति पर 22 अक्तूबर को जारी की गई विज्ञप्ति का पूर्ण

पाठ प्रकाशित किया था। मुझे नहीं मालूम कि यह विज्ञप्ति भारतीय समाचार पत्रों में प्रकाशित हुई थी या नहीं। संगत पैराग्राफ इस प्रकार है:

> ''ब्रिटेन की सरकार ने ब्रसेल्स संधि के अन्तर्गत संयुक्त राष्ट्र संघ के चार्टर की शर्तों के भीतर क्षेत्रीय साहचर्य के रूप में अन्य पश्चिमी देशों के साथ अपने सम्बन्धों की रूपरेखा प्रस्तुत की। ''इस बात पर आम सहमति'' थी–इन शब्दों, अर्थात ''इस बात पर आम सहमति'' की ओर ध्यान दें—मैं नहीं जानता कि ''आम सहमति'' का अर्थ सर्वसम्मति है अथवा हमारे प्रधानमंत्री का इस बात पर कोई मतभेद था—कि ब्रिटेन का उसके यूरोपीय प्रतिरक्षा पड़ौसी देशों के साथ यह साहचर्य राष्ट्रमण्डल के अन्य सदस्यों, संयुक्त राष्ट्र संघ तथा विश्व में शांति को बढ़ावा देने के हितों के अनुरूप है''। मुझे नहीं मालूम कि क्या आज भी यही स्थिति है, क्या हम उन वचनबद्धताओं का अनुमोदन करते हैं अथवा उनसे सहमत हैं जो कि ब्रिटेन की सरकार ने अपने यूरोपीय पड़ौसी देशों के साथ की है, क्या वे हमारे अपने हित में हैं अथवा क्या हम इनकी जिम्मेदारी लेने से बिल्कुल इन्कार करते हैं। यदि हम स्वतंत्र और ठोस विदेश नीति पर चल रहे हैं, जो कि न तो पश्चिमी गुट और न पूर्वी गुट से ही जुड़ी हुई है, तो हम यह कैसे कह सकते हैं कि हम इस बात का अनुमोदन करते हैं अथवा इससे सहमत हैं कि आपका करार, यूरोपीय देशों के साथ आपकी प्रतिरक्षव वचनबद्धताएं हमारे अपने हित में भी हैं तथा इस समझौते से विश्व शांति को बढ़ावा मिलेगा, क्योंकि इस समझौते पर, जिसके परिणामस्वरूप कि बाद में ''एटलांटिक संधि'' हुई, कुछ अन्य यूरोपीय देशों द्वारा कठोर प्रहार किया गया है। सोवियत संघ ने तो यहां तक कह दिया कि इस एटलांटिक संधि के बारे में उनसे कोई परामर्श तक नहीं किया गया और यदि उनसे परामर्श किया गया होता तो निश्चय ही वह उसका भागीदार होता और वह भी सामूहिक विश्व शांति की गारंटी देता। उनसे परामर्श नहीं किया गया तथा यह समझौता उनके पीठ पीछे किया गया है। मेरा इरादा इस पर अपना कोई निर्णय देने का नहीं है, परन्तु सोवियत संघ की सरकार ने यह अवश्य कहा कि इस संधि का लक्ष्य उनका देश ही था क्योंकि संधि पर उसकी पीठ पीछे हस्ताक्षर हुए...

***पं. बालकृष्ण शर्मा:** अध्यक्ष महोदय, मैं माननीय सदस्य से यह जानना चाहता हूं कि क्या हमने ब्रसेल्स संधि अथवा एटलांटिक संधि स्वीकार कर ली है?

श्री एच.वी. कामत: यदि मेरे माननीय मित्र ने मेरी बात ठीक से समझी होती तो मुझे विश्वास है कि वह यह बात नहीं उठाते।

***पं. बालकृष्ण शर्माः** यहां कोई एटलांटिक संधि नहीं है।

***श्री एच.वी. कामतः** मैं एटलांटिक संधि पर नहीं बोल रहा हूं। मैं उनसे यह निवेदन करूंगा कि जो कुछ मैं बोल रहा हूं वह उसे ठीक से सुनें और समझें तथा ऐसा न करें कि लिखते रहें और यदा-कदा उठकर कोई टिप्पणी कर दें।

जो बात मैं कह रहा हूं वह यह है कि हम राष्ट्रमण्डल की यथास्थिति को सामान्यतया तथा विशेषकर मलाया में, दक्षिण पूर्व एशिया में तथा शायद बर्मा में एवं अफ्रीका में भी बनाए रखने के लिए किस हद तक वचनबद्ध हैं। हमने आज के समाचार पत्रों में पढ़ा है कि आने वाले दो वर्षों के भीतर ब्रिटेन ट्रिपोलिटानिया को इटली की ट्रस्टीशिप में अन्तरित कर देगा। उन्नीसवीं शताब्दी की पुरानी मानसिकता तथा पुराना दृष्टिकोण अभी भी बना हुआ है। वे एक देश को दूसरे देश में इस प्रकार अन्तरित कर देते हैं जैसे कि यह कोई चल सम्पत्ति हो, जैसे कि इन देशों के लोगों का इससे कोई सम्बन्ध न हो। आज भी अंग्रेजों की यही नीति है। एशिया के अधिकांश भागों में उपनिवेशवाद अत्यधिक फैला हुआ है, साम्राज्यवाद अत्यधिक फैला हुआ है। क्या हम भी इसमें योगदान कर रहे हैं? क्या हम इस में एक पार्टी बनने जा रहे हैं, यदि सुस्पष्ट रूप से नहीं तो उपलक्षित रूप से, यदि प्रत्यक्ष रूप से नहीं तो अप्रत्यक्ष रूप से? क्या राष्ट्रमण्डल में जातिवाद, उपनिवेशवाद, साम्राज्यवाद जो कुछ भी चल रहा है उस सब में हम एक पार्टी बनने जा रहे हैं? क्योंकि एटली ने कहा है: ''यदि आप चाहें तो हम इसे साम्राज्य की संज्ञा देते हैं, यह एक साम्राज्य है, चाहे यह राष्ट्रमण्डल हो, हमने सरकारी तौर पर कोई भी परिवर्तन नहीं किया है।'' यही है वह भूमिका जो कि आज ब्रिटेन, मलाया तथा बर्मा भी अदा कर रहा है। बर्मा हमारा पड़ौसी देश है, एक अच्छा पड़ौसी देश। बर्मा के साथ हमारे सम्बन्ध काफी सौहार्दपूर्ण रहे हैं, केवल राजनैतिक सम्बन्ध ही नहीं—आखिरकार ये क्षणभंगुर तथा अस्थायी होते हैं—बल्कि गहरे आध्यात्मिक तथा सांस्कृतिक सम्बन्ध। बर्मा में, बर्मा के लोगों के कल्याण में तथा एक ऐसी सरकार की सुरक्षा में जो कि हमारे इस पड़ौसी देश में शांति तथा सुरक्षा सुनिश्चित करेगी रुचि रखना हमारे लिए स्वाभाविक ही है। मैं समझ सकता हूं, इसी प्रकार पाकिस्तान है, इसी प्रकार शायद लंका भी। ब्रिटेन कहता है कि उसने साम्राज्यवाद, उपनिवेशवाद, जातिवाद का परित्याग कर दिया है तो फिर ब्रिटेन इस बर्मा के मामले में रुचि किस कारण रख रहा है? मेरे विचार में, इसका एक ही उत्तर है और वह यह कि ब्रिटेन बर्मा में इसलिए रुचि रख रहा है क्योंकि बर्मा की सीमा

मलाया से लगती है। ब्रिटेन के लिये बर्मा की शांति अथवा बर्मा की सुरक्षा अथवा बर्मा की स्वतंत्रता की अपेक्षा शायद मलाया की टिन तथा रबड़ अत्यंत महत्वपूर्ण है। अतः जब वे देखते हैं कि बर्मा को खतरा है, बर्मा की स्थिति गिर रही है—ईश्वर करे ऐसा न हो—तब वे सचेत हो जाते हैं तथा कहते हैं, ''देखो, यदि बर्मा की स्थिति गिर जाती है, तो मलाया चला जाएगा तथा मलाया हाथ से नहीं जाना चाहिए''। यही कारण है कि आज मलाया आतंकवाद की, लोकतंत्र तथा राष्ट्रवाद के दमन और उत्पीड़न की नीति अपना रहा है और वहां राष्ट्रवाद के समग्र आन्दोलन का दमन किया जा रहा है। हमारे लिए यह शिकायत करने का कोई भी कारण नहीं है कि दक्षिण पूर्व एशिया में, सियाम तथा अन्य भागों में, साम्यवाद अपनी जड़ें मजबूत कर रहा है क्योंकि फ्रांसीसी, डच तथा ब्रिटिश साम्राज्यवादियों ने अपना पुराना खेल नहीं छोड़ा है। वे अभी भी वही खेल खेल रहे हैं। अतः जब मैंने समाचार पत्रों में पढ़ा कि ब्रिटेन, भारत, पाकिस्तान तथा लंका, सभी बर्मा की सहायता करने जा रहे हैं तो मुझे लगा कि दाल में कुछ काला है, क्योंकि मेरे विचार में ब्रिटेन के, उसके मलाया में निहित हित होने के कारण गुप्त उद्देश्य हैं तथा उसके साम्राज्यवादी भाई फ्रांस की वियतनाम में रुचि है तथा साम्राज्यवादी डच की इन्डोनेशिया में। यदि ब्रिटेन ने एशिया में साम्राज्यवाद और उपनिवेशवाद को छोड़ दिया होता, तो वह निश्चय ही मलाया के लोगों से कह सकता था कि वे अपनी सरकार बनाएं तथा वे वहां से हट सकते थे, जैसा कि उन्होंने भारत के सम्बन्ध में किया, परन्तु वे ऐसा नहीं कहते। वे कहते हैं: ''हम मलाया नहीं छोड़ेंगे'' और फ्रांसीसी कहते हैं ''हम हिन्द-चीन नहीं छोड़ेंगे'' तथा इसी तरह डच लोग कहते हैं ''हम इन्डोनेशिया में अड़े रहेंगे''। दक्षिण पूर्व एशिया में यह घटना एक अमंगलसूचक घटना है तथा जब तक कि ब्रिटेन की सरकार यह जो कुछ भी हो रहा है इस सब में एक पार्टी है—ब्रिटेन राष्ट्रमण्डल का एक सहयोगी सदस्य है—तब तक ब्रिटेन की सरकार भले ही कुछ भी कहती रहे, कि मलाया कि सरकार अपनी पसन्द के अनुसार जो चाहे निर्णय ले सकती है आदि, उसकी बात पर विश्वास नहीं किया जा सकता। ब्रिटेन गणपति की हत्या की जिम्मेदारी से जिसे कुछ ही दिन पूर्व फांसी दी गई है तथा एक अन्य भारतीय की जिम्मेदारी से भी, जिसे शायद आज फांसी दी जा रही है छुट्टी नहीं पा सकता। मलाया में जो कुछ भी हो रहा है उसके लिए ब्रिटेन, अपने उपनिवेश कार्यालय के माध्यम से, जिम्मेदार है। क्या हम अपने दिल पर हाथ रखकर कह सकते हैं कि जब तक ब्रिटेन की सरकार मलाया में ऐसी नीति का अनुसरण करती रहेगी, जब तक आस्ट्रेलिया अपनी ''श्वेत आस्ट्रेलिया'' नीति पर

[श्री एच.वी. कामत]

इतराता रहेगा तथा जब तक दक्षिण अफ्रीका अपनी भारत विरोधी नीति पर चलता रहेगा, हम स्वतंत्र रूप से तथा स्वेच्छा से राष्ट्रमण्डल के सदस्य बने रहेंगे, क्योंकि इस घोषणा में हमारे राष्ट्रमण्डल का सदस्य बने रहने के लिये किसी प्रकार की कोई शर्तें निर्धारित नहीं की गई हैं? इसमें केवल यही कहा गया है कि भारत सरकार सदस्य बने रहने की अपनी इच्छा की घोषणा तथा पुष्टि करती है। इस निर्भीक तथा मृदु कथन के अतिरिक्त और कुछ भी नहीं कहा गया है कि हम राष्ट्रमण्डल के सदस्य के रूप में बने रहेंगे, भले ही राष्ट्रमण्डल में कुछ भी होता रहे। अध्यक्ष महोदय, यह कुछ ऐसी बात है जिसे मैं पसन्द नहीं करता तथा मेरा अपना डर यह है कि ब्रिटेन इस बात के लिए उत्सुक है कि एशिया में जो दुष्कर स्थिति है भारत उसमें दखलन्दाजी न करे। ब्रिटेन की रुचि इस बात में है कि भारत उसे एशिया में यथास्थिति बनाए रखने में सहायता दे। मुझे आशा है कि हम ऐसा नहीं करेंगे, परन्तु मुझे विश्वास है कि बिटेन की रुचि इसी में है। मुझे आशा है कि हम ब्रिटेन को दुष्कर स्थिति से बाहर निकलने के लिए कोई सहायता नहीं देंगे और यह कि हम अपनी स्वतंत्र विदेश नीति का अनुसरण करेंगे।

इसके पश्चात् मैं इसके तीसरे पहलू पर आता हूं और वह यह है कि हम शांति, स्वतंत्रता तथा प्रगति का लक्ष्य प्राप्त करने में निर्बाध रूप से अपना सहयोग देने के लिए सहमत हुए हैं। बहुत सुन्दर शब्द हैं, परन्तु केवल सुन्दर शब्द ही सदैव पर्याप्त नहीं होते। ब्रिटेन ने हमेशा कहा है कि वह प्रगति, स्वतंत्रता तथा शांति का हामी है और न जाने किस किस का। जार्ज बर्नार्ड शॉ ने जिन्हें कुछ दिन पूर्व पंडित नेहरू ने कुछ आमों का उपहार दिया था एक बार अपने एक नाटक में—मैं समझता हूं कि यह नाटक ''मैन एण्ड सुपरमैन'' है—लिखा था कि यह आश्चर्यजनक है कि ब्रिटेन अपनी कूटनीति को किस प्रकार अपने अनुकूल बना लेता है। जब ब्रिटेन किसी सम्राट को सत्ताविहीन करना चाहता है तो वह ऐसा गणराज्य के सिद्धान्तों के आधार पर कर लेता है। जब ब्रिटेन किसी सम्राट को पुनः प्रतिष्ठित करना चाहता है तो वह ऐसा राजतंत्रवादी अथवा राजतंत्रीय सिद्धान्तों के आधार पर कर लेता है। जब ब्रिटेन किसी अन्य देश को अपना उपनिवेश बनाना चाहता है तो वह ऐसा मानवीय आधारों पर कर लेता है तथा जब वह कोई अत्याचार अथवा अपराध करना चाहता है तो वह ऐसा न्याय के चिरस्थायी सिद्धान्तों के आधार पर करता है। मुझे विश्वास है कि भारत को राष्ट्रमण्डल में शामिल करने के पश्चात् आज ब्रिटेन ठीक इसी प्रकार कह सकता है कि जो कुछ भी उन्होंने किया है वह राष्ट्रमण्डल के सिद्धान्तों, इच्छास्वातंत्र्यवादी सिद्धान्तों तथा शक्ति के सिद्धान्तों के आधार पर किया है। वह तो यह

भी कह सकता है कि भाईचारे के सिद्धान्तों के आधार पर उसने ऐसा किया है, परन्तु हमें इसकी गहराई में जाना होगा तथा हमारे सामने जो सूत्र प्रस्तुत किया गया है उसकी मूल धारणा का पता लगाना होगा। हमें यह निश्चय ही देखना होगा कि राष्ट्रों का यह समूह शांति, स्वतंत्रता तथा प्रगति का लक्ष्य प्राप्त करने में कितना सहयोग देगा। यह राष्ट्रमण्डल एक ऐसी संस्था है जो स्वयं ही विभाजित है। यह आधी परतंत्र है तथा आधी स्वतंत्र है। जिस संस्था में आपस में ही विभाजन हो, वह कायम नहीं रह सकती तथा राष्ट्रों का ऐसा समूह जो कि आधा परतंत्र हो तथा आधा स्वतंत्र, स्थायी नहीं रह सकता। अतः जब तक राष्ट्रमण्डल के भीतर की इन बुराइयों को दूर नहीं किया जाता अथवा किसी न किसी प्रकार उन्हें समाप्त नहीं किया जाता, मुझे विश्वास है कि तब तक यह राष्ट्रमण्डल निर्बाध रूप से शांति, स्वतंत्रता तथा प्रगति का लक्ष्य प्राप्त नहीं कर सकता। मैं बुराइयों की, अपशकुन की भविष्यवाणी नहीं करना चाहता, परन्तु मेरा अपना संशय यह है कि जब तक कि राष्ट्रमण्डल वही रहता है जैसा कि यह अब है, जब तक आस्ट्रेलिया अपनी सर्व-श्वेत नीति का अनुसरण करता रहेगा, जब तक दक्षिण अफ्रीका रंगभेद की नीति पर चलता रहेगा तथा स्वयं ब्रिटेन एशिया में अपनी साम्राज्यवादी तथा उपनिवेशवादी नीतियों का अनुसरण करता रहेगा, तब तक भिन्न-भिन्न कौमों का यह निकाय विश्व शांति तथा मानव जाति के कल्याण का लक्ष्य प्राप्त करने के लिये कभी भी मिलकर काम नहीं कर सकता। हो सकता है कि ब्रिटेन शांति की बात सोच रहा हो, अर्थात् उसके अपने राज्यक्षेत्रों तथा साम्राज्य के लिए यथास्थिति बनाए रखने की बात, परन्तु जो उद्देश्य हमने सामने रखा है वह संकल्प में उल्लिखित है, अर्थात् यह कि हम विश्व शांति तथा मानव जाति के कल्याण के लिए सहयोग देंगे तथा भरसक प्रयत्न करेंगे। क्या हम वर्तमान व्यवस्था के अन्तर्गत यह करने जा रहे हैं? क्या हम यह सब करने में समर्थ होंगे तथा हम यह सब किस सीमा तक कर पाएंगे? मैं चाहता हूं कि प्रधानमंत्री इस विषय पर और प्रकाश डालें। मेरे विचार से महत्वपूर्ण कसौटी यह है कि हम किस सीमा तक अपनी नीति का अनुसरण कर पाएंगे, क्योंकि हम—पुरानी विरासत के साथ हमारा भारत—शांति, विश्व शांति के लिए प्रतिबद्ध हैं, हम विदेश सम्बन्धी मामलों तथा प्रतिरक्षा मामलों दोनों के सम्बन्ध में किसी सीमा तक ऐसी नीति का अनुसरण कर सकते हैं जो कि विश्व-शांति तथा मानव जाति के कल्याण में सहायक हो और राष्ट्रों के किसी गुट से हम कितनी सीमा तक नहीं बंधेंगे? हम न तो पूर्वी गुट में और न पश्चिमी गुट में ही शामिल होने के उत्सुक हैं, परन्तु हमने एक नये गुट का सृजन कर लिया है। मैं आशा करता हूं कि

[श्री एच.वी. कामत]

यह नया समूह अथवा गुट हमारे लिए हानिकारक रूप में काम नहीं करेगा तथा न ही यह हमारे द्वारा विकसित की जाने वाली सुदृढ़ विदेश नीति तथा मजबूत प्रतिरक्षा नीति के मार्ग में बाधक होगा। ऐसा कहा गया है कि इस संघ से अनेक लाभ हो सकते हैं। मैं जानना चाहता हूं कि वे लाभ क्या हैं, चाहे वे विदेश मामलों में ही अथवा प्रतिरक्षा अथवा आर्थिक मामलों में। क्या कारण यह है कि क्योंकि पाउंडों में हमारी शेष राशियां अभी वहां पड़ी हुई हैं, इसलिए हम तब तक राष्ट्रमण्डल में रहना चाहते हैं जब तक कि हम उन राशियों की पाई-पाई तक वसूल न कर लें। यह सुविदित है और सारी दुनिया इसे जानती है कि ब्रिटेन सरकार द्वारा इस मामले में जिस नीति का अनुसरण किया गया है उसका स्वरूप ऐसा नहीं था कि वह पक्की ईमानदार हो। मैं आशा करता हूं कि शीघ्र ही जो वित्तीय शिष्टमण्डल लन्दन जा रहा है वह ब्रिटिश सरकार को इस बात के लिए राजी करने में सफल होगा कि वह पाउंडों की हमारी शेष राशियों के बारे में अधिक ईमानदारी की नीति का अनुसरण करे।

इसके अलावा, यह भी सुझाव दिया गया है कि भारत अलग-थलग नहीं रह सकता। यह भी एक तर्क दिया गया है। क्या यह बात गम्भीरता से कही गयी है कि जो देश किसी एक या दूसरे ग्रुप में नहीं है अथवा राष्ट्रमण्डल में नहीं है और इस प्रकार के अनेक देश हैं—वे सभी अलग-थलग रह रहे हैं। आज की दुनियां में, चाहे आप किसी ग्रुप में शामिल होते हैं अथवा नहीं, आज की दुनिया का जो स्वरूप है, उसमें कोई भी देश अलग-थलग नहीं हो सकता। यदि कोई देश इस राष्ट्रमण्डल में शामिल नहीं होता, तो क्या इसका यह अर्थ है कि यह अलग-थलग है? भारत को राष्ट्रमण्डल की आवश्यकता की अपेक्षा राष्ट्रमण्डल को भारत की आवश्यकता कहीं अधिक है। यदि इस मनोवैज्ञानिक तथ्य को ध्यान में रखा गया होता, तो बातचीत का शायद हम अधिक अच्छा परिणाम प्राप्त कर सकते थे। यदि इस तथ्य ने हमारी नीति का मार्गदर्शन किया होता, तो हम बेहतर कार्यवाही कर सकते थे। हमें यह नहीं भूलना चाहिए कि दुनिया में तुर्की जैसे छोटे देशों ने कई बार अकेले रहकर स्थिति का सामना किया है। जब प्रथम विश्व युद्ध समाप्ति पर था, तो कमाल अतातुर्क ने अपनी जीर्ण-शीर्ण सेना से यूरोप के अनेक शक्तिशाली देशों से अकेले ही लोहा लिया था तथा उन्हें पराजित किया था। इसी प्रकार क्रांति के पश्चात् भोजन तथा वस्त्र के अभाव से ग्रस्त रूसी सेना ने ब्रिटेन, फ्रांस तथा अनेक अन्य देशों

का अकेले ही मुकाबला किया था तथा विजयी रही थी। उत्साह ही है जिससे कि अन्ततोगत्वा अन्तर पड़ता है। आज पराजयवाद की जिस भावना ने हमें जकड़ लिया है उसका परित्याग करना होगा। यह दुर्बलता है, यह हमारे मन, मस्तिष्क तथा हृदय में बैठी हुई कायरता है। मेरे विचार में आज हमें जिस बात की आवश्यकता है, वह है कुरुक्षेत्र का युद्ध होने से पूर्व की वह मंत्रणा जो कि श्री कृष्ण ने अर्जुन को युद्ध भूमि में दी:

क्लैव्यामास्मगम: पार्थ नैतत्वय्युपपद्यते।
क्षुद्रं हृदयदौर्बल्यं त्यक्तवोतिष्ठ परंतप।।

और इससे पूर्व कि मेरे मित्र यह शिकायत करें कि मैंने श्लोक उद्धृत किया है और उसका अनुवाद नहीं किया, अध्यक्ष महोदय, मैं आपकी अनुमति से इस श्लोक का सारांश प्रस्तुत करता हूं। यहां श्री कृष्ण अर्जुन से कह रहे हैं कि वह दुर्बलता तथा कायरता के आगे न झुकें। वह कहते हैं ''अर्जुन, यह तुम्हें शोभा नहीं देता। हृदय की यह दुर्बलता लज्जाजनक है। इसका इसी क्षण परित्याग करो। उठो और युद्ध करो''। यही हमारा दृष्टिकोण होना चाहिए और मैं यह आशा करता हूं कि कम से कम भविष्य में यह हमारी नीति का मार्गदर्शन करेगा। कम से कम इतना तो है कि हमारा देश तीस करोड़ से अधिक लोगों का देश है और हम दुनिया में किसी भी बुराई का, यदि आवश्यकता पड़े तो अकेले ही मुकाबला कर सकते हैं। जहां तक मेरा सम्बन्ध है, मैं अकेले ही मुकाबला करने को प्राथमिकता दूंगा, आम बनिस्बत इसके कि मैं लोकतंत्र, समानता तथा स्वतंत्रता के अपने सिद्धान्तों को तिलांजलि दूं जिनके लिए कि हम गत अनेक वर्षों से लड़ते आ रहे हैं और कुर्बानी देते आ रहे हैं। यदि राष्ट्रमण्डल इन आदर्शों के मार्ग में बाधक होता है, यदि वह इन आदर्शों के कार्यान्वयन में अवरोध पैदा करता है, तो मैं अकेले ही मुकाबला करना पसन्द करूंगा। महात्मा गांधी ने हमें ऐसा करना सिखाया। लोकमान्य तिलक ने हमें यही सिखाया। महायोगी अरविन्द ने हमें यही सिखाया। नेताजी सुभाष ने हमें यही सिखाया। अध्यक्ष महोदय, आपने भी हमें सदैव सही सलाह दी है। हमें अपने दिलोदिमाग को मजबूत रखना होगा और अपनी स्वयं की आन्तरिक शक्ति पर निर्भर रहना होगा तथा हमारे नेता पंडित नेहरू तथा सरदार पटेल ने हमसे सदैव यही कहा है कि दुनिया हमें कुछ भी हानि नहीं पहुंचा सकती। केवल हमारी आन्तरिक कमजोरी ही हमें परास्त कर सकती है, कोई बाहरी खतरा नहीं। यदि हमारी आन्तरिक शक्ति सुदृढ़ है तो हम पर कोई भी अभिभावी नहीं हो सकता। मुझे आशा है कि भविष्य में राष्ट्रमण्डल के साथ हमारे सम्बन्धों के

[श्री एच.वी. कामत]

बारे में यह तथ्य हमारा मार्ग-दर्शन करेगा। सभा के समक्ष जो सूत्र रखा गया है उसके बारे में तथा घोषणा के बारे में मैं तनिक भी संतुष्ट नहीं हूं। मेरे विचार में इसकी शब्दावली अधिक संतोषप्रद होनी चाहिए थी। मेरे विचार में हम अपने साथ बेहतर व्यवहार सुनिश्चित करवा सकते थे। परन्तु जो प्रस्ताव इस समय हमारे समक्ष है, वह पहले से ही किया हुआ एक कार्य है। जैसाकि पंडित नेहरू ने कहा है कि यह एक ऐसी संधि है जोकि पहले ही हो चुकी है। फिर भी मैं इतना कहूंगा कि मैं इस घोषणा को इस आशा में स्वीकार करता हूं कि भविष्य में राष्ट्रमण्डल की नीतियों का मार्ग-दर्शन माननीय विचारों के आधार पर होगा तथा जातिवाद, उपनिवेशवाद और साम्राज्यवाद का परित्याग कर दिया जाएगा और यह कि राष्ट्रमण्डल दुनिया का नेतृत्व सही नीतियों के आधार पर करेगा। मुझे डर है कि यह आदर्श बहुत ही कठिन है परन्तु परमात्मा की कृपा से सब कुछ सम्भव है और मैं आशा करता हूं कि प्रभु हमारा सही मार्ग-दर्शन करेंगे, ताकि हम वास्तविक मानवीय भ्रातृत्व सुनिश्चित कर सकें—केवल राष्ट्रमण्डल देशों का भ्रातृत्व ही नहीं बल्कि इस दुनिया में, स्वतंत्र दुनिया में शीघ्र ही वास्तविक मानवीय भ्रातृत्व।

***अध्यक्षः** श्री अनन्तशयनम् आयंगर।

अब मैं सदस्यों से निवेदन करूंगा कि वे अपने भाषणों को 15 मिनट तक सीमित रखें।

***श्री एम. अनन्तशयनम् आयंगर** (मद्रास : जनरल): अध्यक्ष महोदय, मैं माननीय प्रधानमंत्री को बधाई देना चाहता हूं कि उन्होंने राजनीतिज्ञोचित तरीके से संधि की, जिसकी घोषणा के अनुसमर्थन के लिए आज सभा से कहा गया है। यह हमारे द्वारा इस देश को प्रभुसत्ता सम्पन्न स्वतंत्र गणराज्य घोषित किए जाने का स्वाभावित परिणाम है। आज दुनिया का कोई भी देश अलग-थलग नहीं रह सकता। हमारे लिए यह आवश्यक है कि हम दुनिया के अन्य स्वतंत्र देशों के साथ किसी न किसी प्रकार समझौता करें, एक प्रकार मैत्री समझौता जिससे कि हम उन देशों से जुड़ सकें जोकि दुनिया में स्थायी शांति स्थापित करने में प्रयत्नशील हैं। अतः जो समझौता किया गया है उसके सम्बन्ध में इस देश में किसी को खेद अनुभव करने की कोई आवश्यकता नहीं है। दूसरी ओर, यदि हमने इस प्रकार का कोई समझौता न किया होता, तो हम दुनिया में पुनः शांति स्थापित करने के

अपने कर्तव्य में असफल रहते। जब बातचीत चल रही थी, उस दौरान तथा उससे पूर्व भी कुछ समय के लिए जबकि यह अफवाहें चल रही थीं कि समान अथवा दोहरी नागरिकता की व्यवस्था होगी, मुझे थोड़ी घबराहट हुई थी। यह किस प्रकार की नागरिकता होगी तथा हमारे देश पर किस प्रकार की प्रतिबद्धताएं तथा दायित्व लागू होंगे, इनकी कल्पना हम नहीं कर सकते थे। परन्तु अब मैं राहत महसूस कर रहा हूं। इसमें कोई दोहरी नागरिकता की बात नहीं है तथा किसी भी प्रकार की कोई प्रतिबद्धताएं नहीं हैं। हम पूर्णत: स्वतंत्र हैं यह किसी प्रकार का संवैधानिक अथवा राजनीतिक सम्बन्ध नहीं है। हम मित्र हैं और इस बात को इस समझौते द्वारा मान्यता मिली है जिसका इस घोषणा के रूप में अनुसमर्थन करने के लिए हमसे कहा गया है। युद्ध के मामले में तथा अन्य सभी मामलों के बारे में भी तथा व्यापार सम्बन्धों के बारे में भी हम पूर्णत: स्वतंत्र हैं। हमें याद होगा कि 1939 के दौरान सभी डोमिनियनों ने अपनी-अपनी संसदों में युद्ध में शामिल होने का निर्णय लिया था। हम सबको याद है कि दक्षिणी अफ्रीका में स्मट्स बहुत ही कम बहुमत से दक्षिण अफ्रीका को युद्ध में शामिल कर सके थे। डोमिनियनों को भी यह छूट थी कि वे युद्ध से बाहर भी रह सकती थीं। जब हम स्वयं को प्रभुसत्ता सम्पन्न स्वतंत्र गणराज्य घोषित कर रहे हें तो यह सर्वदा हमारी अपनी इच्छा पर है कि हम स्वयं को स्वतंत्र रखें। हम किसी एक या दूसरे गुट से बंधे हुए नहीं हैं। हम ब्रिटिश सरकार के अंचल के छोर से बंधे हुए नहीं है। हम अब ब्रिटिश के प्रभुत्वाधीन नहीं रहे हैं। यदि किसी प्रकार के दायित्वों के बिना कोई साझेदारी हो सकती है तो हम बराबर के साझेदार हैं। यह केवल मैत्री का प्रश्न है। हम अपने सम्बन्धों का चयन कर सकते हैं। इससे सारी दुनिया ने राहत की सांस ली है। युद्ध के काले बादल मंडरा रहे थे तथा अब शनै:-शनै: वे फट रहे हैं, राजनीतिज्ञता के इस कार्य से यह और भी अधिक सम्भव हो गया है कि युद्ध की आशंकाएं अब काफी सीमा तक दूर हो जाएंगी। राजनीतिज्ञता की इस कार्यवाही ने युद्ध टाल दिया है। इंग्लैंड, यूरोपीय महाद्वीप तथा अमरीका से हाल ही में वापस आए कुछ व्यक्तियों से मुझे पता चला है कि वे लोग हमारे प्रधानमंत्री के इस कार्य से अत्यंत सन्तुष्ट हैं। वर्षो पहले किसी ने कहा था कि पूर्व तथा पश्चिम का कभी आपस में मेल नहीं हो सकता। परन्तु राजनीतिज्ञता के इस कार्य से पूर्व तथा पश्चिम का परस्पर मेल हुआ है। मुझे विश्वास है कि यह मेल स्थायी होगा तथा मैत्री के धागे मजबूत, अधिक मजबूत होते चले जाएंगे।

[श्री एम. अनन्तशयनम् आयंगर]

मैं इस बात को जानता हूं कि कुछ सदस्यों द्वारा यहां दिए गए कुछ भाषणों में कुछ सन्देह व्यक्त किया गया है। हम डेढ़ सौ वर्ष से ब्रिटेन के प्रभुत्व में रहे हैं। मैं अपने मित्रों पर आरोप नहीं लगा रहा हूं, परन्तु वे बदली हुई परिस्थितियों के प्रति सजग नहीं हैं। वे अभी भी उन्हीं पुरानी परिस्थितियों में कायम हैं और उन्हीं के बारे में सोच रहे हैं जबकि हम ब्रिटेन के प्रभुत्व के अधीन थे। यहां दिए गए भाषणों का झुकाव उस दिशा में रहा है। इसका कुछ औचित्य भी है क्योंकि राष्ट्रमण्डल के एक सदस्य दक्षिण अफ्रीका में अभी भी जातीय भेदभाव विद्यमान है। राष्ट्रमण्डल का एक अन्य सदस्य आस्ट्रेलिया श्वेत व्यक्ति नीति पर आग्रह कर रहा है। एक तीसरा सदस्य मलाया मामूली बातों के लिए, अपने साथ शस्त्र रखने तक के लिए, हमारे लोगों का निष्ठुरता से नाश कर रहा है। ये बातें हैं, परन्तु जिस समय हम आपस में कुछ सम्बन्ध स्थापित करते हैं तो हम यह आशा नहीं करते कि ये सब बातें क्षण भर में समाप्त हो जाएंगी। मुझे विश्वास है कि राष्ट्रमण्डल के अन्य सदस्य देशों के विचारों में परिवर्तन आएगा, यहां तक कि अब के बाद तथाकथित भारत विरोधी प्रचार भी समाप्त हो जाएगा। जब तक एक देश के सम्बन्ध दूसरे देश के साथ मनमुटावपूर्ण रहते हैं, अनेक अरुचिकर बातें कही जा सकती हैं, परन्तु अब शीघ्र ही दिलोदिमाग में तब्दीली आएगी। मुझे विश्वास है कि इंग्लैंड में भी अनेक लोगों की यह समझदारीपूर्ण राय है कि इस सम्बन्ध को जारी रखा जाए। मुझे विश्वास है कि अब के पश्चात् कोई भी अंग्रेज तथा अन्य कोई भी व्यक्ति जिसकी विश्व शान्ति में रुचि हो, भारत के हितों के विरुद्ध एक भी अनुचित शब्द नहीं कहेगा। आज सुबह के अखबारों में यह समाचार पढ़कर मुझे प्रसन्नता हुई कि मैक्सिको तथा एक अन्य देश के कहने पर राष्ट्र संघ की महासभा में यह प्रस्ताव पास किया गया कि दक्षिण अफ्रीका के मामलों की जांच करने हेतु किसी प्रकार की व्यवस्था की जानी चाहिए, एक गोलमेज सम्मेलन किया जाना चाहिए। मुझे विश्वास है कि दक्षिण अफ्रीका के मामलों को शान्तिपूर्वक सुलझाने में अधिक देरी नहीं लगेगी। एक अन्य अवसर पर मुझे प्रधानमंत्री ने बताया था कि आस्ट्रेलिया और न्यूजीलैंड इस बारे में उत्सुक हैं कि हम राष्ट्रमण्डल के सदस्य बने रहें। यदि ऐसा है तो मुझे विश्वास है कि वे भारत के प्रति अपनी नीति बदलेंगे, परन्तु हमें उनको कुछ समय देना होगा। उन्होंने एक संशय के युग में शुरुआत की थी, परन्तु वह शनैः-शनैः दूर हो जाएगा। प्रेम अथवा स्नेह अथवा मैत्री एकपक्षीय नहीं होती, वह पारस्परिक ही होती है। हमने सही दिशा अपनाई है, हमें इससे कोई हानि नहीं होगी अपितु सब प्रकार के लाभ प्राप्त होंगे। प्रतिरक्षा तथा अनेक अन्य बातों के सम्बन्ध में हम उन अनेक लाभों से अपने को अलग नहीं रख सकते जो कि अन्ततोगत्वा हमें

प्राप्त होंगे। हमारे राष्ट्रिक दुनिया के इस छोर से उस छोर तक मौजूद हैं। यदि हम स्वयं को प्रभुसत्ता सम्पन्न लोकतंत्रीय गणराज्य घोषित कर दें और इस प्रकार की कोई व्यवस्था न करें तो उनका क्या होगा? मारिशस तथा अन्य स्थानों में वे काफी संख्या में हैं। उन्हें अन्य देशीय मानकर वहां से निकाल दिया जाएगा। इन देशों के राष्ट्रिक नहीं हैं और न ही उन्होंने इस देश की राष्ट्रीयता छोड़ी है। इसलिए यह व्यवस्था उन देशों में रह रहे हमारे राष्ट्रिकों के हित में होगी।

एक अन्य लाभ भी है। यदि हम ऐसी व्यवस्था नहीं करेंगे तो हमारे ऊपर भारी दायित्व आ पड़ेंगे। अमरीका किसी अन्य देश के साथ आसानी से सहायता समझौता नहीं करता। मैं अभी भी इस विचार का हूं कि जहां तक हमारी विदेश नीति का सम्बन्ध है, यह नीति पूर्ण तटस्थता की नीति होनी चाहिए। हमें किसी सत्ता गुट में शामिल होने अथवा न होने का पूरा अधिकार है। मुझे विश्वास है कि प्रभु की सहायता से हम दो युद्धरत देशों में बीच-बचाव करने में तथा स्थायी शांति स्थापित करने और युद्ध को पूरी तरह टालने में समर्थ होंगे। मैं कहता हूं कि वे व्यक्ति भी जिन्होंने मलाया, आस्ट्रेलिया तथा दक्षिण अफ्रीका का उल्लेख किया है, इस घोषणा के विरुद्ध नहीं हैं। वे केवल यह चाहते हैं कि इसमें इतना संशोधन किया जाये कि इस मामले से दिलोदिमाग में तब्दीली आए। परन्तु हमें कोई शर्तें नहीं रखनी चाहिए, हमें उन लोगों की सद्भावना और नेकनीयती पर विश्वास करना चाहिए जोकि अपने साथ-साथ हमें भी इस राष्ट्रमण्डल का सदस्य बनाना चाहते हैं। इस घोषणा से ऐसा प्रतीत हो सकता है कि शायद भारत ही है जोकि राष्ट्रमण्डल के साथ इस सम्बन्ध को जारी रखने के लिये उत्सुक है। यह इस घोषणा की भाषा हो सकती है परन्तु हमें केवल भाषा को ही नहीं देखना चाहिए। दूसरा पक्ष भी समान रूप से उत्सुक है, अन्यथा प्रधानमंत्रियों का यह सम्मेलन नहीं हो सकता था और न ही तो यह घोषणा की जा सकती थी। घोषणा के पाठ से ऐसा प्रतीत हो सकता है जैसे कि प्रभुसत्ता सम्पन्न गणराज्य बनने से पूर्व हम इस घोषणा को जारी किए जाने के लिए उत्सुक थे। परन्तु उन्होंने एक सूत्र खोजा ताकि ब्रिटिश राष्ट्रमण्डल नाम बदलकर राष्ट्रमण्डल नाम रखा। अब हम स्वयं को धोखे में नहीं रख सकते कि दुनिया में हमारे कोई शत्रु नहीं हैं, अनेक शत्रु हैं जोकि दुनिया में हमारी स्थिति के प्रति ईर्ष्या रखते हैं। हमारी प्रतिष्ठा तथा महिमा बढ़ी है और बहुत ही कम समय में हमारा कद काफी ऊंचा हो गया है। अब यह हमारे लिए है कि हम ऐसा कुछ न करें जो कि इस प्रतिष्ठा के लिए हानिकारक हो।

[श्री अनन्तशयनम् आयंगर]

इसके अलावा एक बात और भी है। किसी अन्य बात का ध्यान किए बिना, यदि मुझ से पूछा जाए कि मेरा झुकाव किस ओर है, तो मैं निश्चित रूप से यह कहूंगा कि मैं केवल लोकतंत्र की ओर झुकूंगा तथा मैं किसी तानाशाही से स्वयं को सम्बद्ध नहीं करूंगा। यह मामला अभी हमारे समक्ष नहीं आ रहा है, परन्तु फिर भी यदि राष्ट्रमण्डल के साथ कोई सम्बन्ध कायम करने का कोई कारण है, तो वह ठीक-ठीक यही है कि यह राष्ट्रमण्डल पूरी तरह से लोकतंत्र के प्रति वचनबद्ध है। जो लोकतंत्र ब्रिटेन में कायम है आप उस पर विचार करें। जिस प्रकार वे अपना लोकतंत्र चलाते हैं, वह सचमुच मेरे लिए आश्चर्यजनक है। स्टालिन तथा चर्चिल आदि जैसे अनेक युद्ध नायक हुए हैं। परन्तु चर्चिल के साथ क्या हुआ? उन्होंने रातों-रात उन्हें हटा दिया तथा आज वह विपक्ष में बैठे हैं और कोई भी उसका समर्थक नहीं है। हमें इसी प्रकार के लोकतंत्र में शामिल होना चाहिए और इसलिए हमें ब्रिटेन के साथ मिलकर चलना चाहिए जो कि संसदों की जननी है, समस्त विश्व में लोकतंत्रीय प्रणाली का अग्रदूत है।

जहां तक मेरे मित्र, प्रो. शिब्बनलाल सक्सेना के संशोधन का प्रश्न है, मेरे विचार में इसकी कोई आवश्यकता नहीं है। जो कुछ उन्होंने कहा है, वह यह है कि संविधान पास किए जाने के तुरंत पश्चात् वयस्क मताधिकार पर आधारित चुनाव होंगे तथा हमें उस समय यह निर्णय करना चाहिए कि हम राष्ट्रमण्डल की अपनी सदस्यता जारी रखें अथवा नहीं। उसके लिए मेरा उत्तर यह है कि यदि हम इसी समय कहते हैं कि हम राष्ट्रमण्डल की अपनी सदस्यता जारी रखेंगे, तो भी ऐसी कोई बात नहीं है। जो कि भविष्य में आने वाली संसद को यह सदस्यता समाप्त करने से रोक सके। अपना पद ग्रहण करने के तुरंत पश्चात् वे अपनी पहली ही बैठक में राष्ट्रमण्डल की अपनी सदस्यता समाप्त करने सम्बन्धी संकल्प पास कर सकते हैं। अब और तब के बीच हमें यह देखने के लिए पर्याप्त समय मिलेगा कि क्या राष्ट्रमण्डल के अन्य सदस्य भारत के प्रति अपना दृष्टिकोण बदलते हैं अथवा नहीं। यदि उस समय तक उनका दृष्टिकोण नहीं बदलता है, तो हम और अधिक दृढ़ता से उनसे कह सकते हैं कि वे हमारे मित्र नहीं हैं। इस प्रकार हम ऐसी किसी कार्यवाही के प्रति वचनबद्ध नहीं हो रहे हैं जिसे कि वापस नहीं लिया जा सकता। अतः मैं अपने माननीय मित्र से अनुरोध करूंगा कि वह अपने संशोधन पर आग्रह न करें। मुझे प्रसन्नता होती यदि उन्होंने यह प्रस्तुत ही न किया होता। स्वाभाविक है कि इस संशोधन का आधार संशय है। आज तक तो ''कामनवैल्थ'' का अर्थ यह था कि हमारा धन उनका

धन था तथा उनका धन तो उनका निजी था ही। अब के बाद यह स्थिति बदल जाएगी तथा राष्ट्रमण्डल सबके लिए एक साझा धन होगा। मैं सदन से अपील करता हूं कि वह प्रधानमंत्री के प्रस्ताव को बिना किसी परिवर्तन के पास करे।

***श्री दामोदर स्वरूप सेठ** (संयुक्तप्रान्त : जनरल): अध्यक्ष महोदय, मैं आपकी अनुमति से भारत के माननीय प्रधानमंत्री के उस प्रस्ताव का विरोध करना चाहता हूं जो कि लन्दन में हुए राष्ट्रमण्डल सम्मेलन में उनके द्वारा की गई घोषणा का अनुसमर्थन कराने के लिए पेश किया गया है। महोदय, आपने अभी-अभी कहा है कि इस बात का कि भारत राष्ट्रमण्डल में बना रहे अथवा नहीं, हम जो संविधान बनाने जा रहे हैं उस पर सीधा प्रभाव पड़ेगा। अत: मेरा यह विचार है कि संविधान सभा द्वारा इस प्रश्न पर कोई निर्णय लिए जाने से पूर्व ही प्रधानमंत्री ने यह वचन देकर कि भारत राष्ट्रमण्डल की अपनी सदस्यता जारी रखेगा, अपने प्राधिकार से बाहर कार्य किया है। अध्यक्ष महोदय, वह ऐसा करने के लिए सक्षम नहीं थे। यदि मुझे ठीक से याद है तो राष्ट्रमण्डल के प्रधानमंत्रियों के सम्मेलन से पूर्व हमारे प्रधानमंत्री ने बार-बार हमें यह आश्वासन दिया था कि इस बात का निर्णय अन्ततोगत्वा संविधान सभा करेगी कि क्या भारत राष्ट्रमण्डल की अपनी सदस्यता जारी रखे अथवा नहीं। अध्यक्ष महोदय, यह तर्क दिया जा सकता है कि हमारे प्रधानमंत्री द्वारा वहां की गई घोषणा इस मामले में अन्तिम निर्णय नहीं है और इसीलिए इस सभा से उसका अनुसमर्थन करने के लिए कहा गया है। अध्यक्ष महोदय, मैं अत्यंत नम्रता से निवेदन करूंगा कि राष्ट्रमण्डल का सदस्य बने रहने के लिए सहमत होकर प्रधानमंत्री ने संविधान सभा के प्रभुसत्तात्मक स्वरूप पर अत्यधिक प्रतिकूल प्रभाव डाला है और इसे एक ऐसी स्थिति में डाल दिया है, जिसमें कि इसे उनके द्वारा राष्ट्रमण्डल में की गई घोषणा का विवश होकर अनुसमर्थन करना पड़ रहा है। ऐसा इसलिए है कि यदि यह सभा इस घोषणा का अनुसमर्थन करने से मना कर देगी तो उसका अर्थ होगा कि इस सभा का तथा भारत के लोगों का उनमें विश्वास नहीं है। इसलिए इस संविधान सभा के सामने इसके सिवाय कोई चारा नहीं है कि यह उनके द्वारा किये गये समझौते का अनुसमर्थन करे।

जिन परिस्थितियों में यह सभा निर्वाचित हुई थी उनसे मैं पूरी तरह परिचित हूं। यह लगभग एक दलीय संस्था है तथा इससे आसानी से वह सब कुछ करवाया जा सकता है जो कि सत्तारूढ़ सरकार करवाना चाहे। परन्तु फिर भी मैं यह कहूंगा कि संविधान

[श्री दामोदर स्वरूप सेठ]

सभा द्वारा इस प्रश्न पर अन्तिम निर्णय लिए बिना प्रधानमंत्री को राष्ट्रमण्डल में बने रहने पर सहमत नहीं होना चाहिए था। उनको कुछ दिन और प्रतीक्षा करनी चाहिए थी। जो घोषणा उन्होंने लन्दन सम्मेलन में की उसे वह इस प्रश्न के संविधान सभा द्वारा औपचारिक रूप से स्वीकार कर लिये जाने के बाद कर सकते थे। परन्तु उन्होंने किन्हीं कारणों से, जिन्हें केवल वही अच्छी तरह जानते हैं, घोषणा करना उचित समझा और इस प्रकार वह भारत को राष्ट्रमण्डल का सदस्य बनाए रखने के लिए वस्तुतः सहमत हो गये।

अध्यक्ष महोदय, मैं सभा के समक्ष निवेदन करना चाहूंगा कि हमारे प्रधानमंत्री द्वारा लन्दन सम्मेलन में की गई घोषणा कोई महत्वहीन अथवा साधारण घोषणा नहीं है। यह घोषणा उस प्रतिज्ञा की घोर अवहेलना करती है जो कि हमारे नेता गत 17 वर्षों से 26 जनवरी को राष्ट्रीय झण्डे के नीचे बार-बार करते रहे हैं और देश के लोगों से करवाते रहे हैं।

अतः आज जबकि राष्ट्रपिता शारीरिक रूप से हमारे मध्य नहीं हैं, हम देखते हैं कि उनके नाम में, सत्य तथा अहिंसा के नाम में, प्रतिदिन लोगों को उपदेश दिये जाते हैं कि वे राष्ट्रपिता द्वारा दिखाये गये आदर्श मार्ग का ही अनुसरण करें। हम केवल इसी से संतुष्ट नहीं हैं। हम विश्व के अन्य देशों को भी उपदेश देते हैं तथा उनसे कहते हैं कि विश्व में शान्ति तथा सुरक्षा स्थापित करने का एकमात्र मार्ग यही है कि महात्मा गांधी द्वारा प्रतिपादित सत्य और अहिंसा के आदर्शों का अनुसरण किया जाये। मेरी समझ में यह नहीं आता कि गत 17 वर्षों से देश के करोड़ों लोगों द्वारा बार-बार ली गई शपथों की अवहेलना करने के पश्चात् हम अन्य देशों के लोगों से कैसे यह आशा कर सकते हैं कि वे राष्ट्रपिता के आदर्शों पर चलें तथा इस किस मुंह से विश्व को उसी मार्ग पर चलने के लिए कह सकते हैं जिसका कि हम इतनी निर्लज्जता से परित्याग कर रहे हैं।

अध्यक्ष महोदय, हमारे प्रधानमंत्री ने यह घोषणा तो कर दी है कि भारत राष्ट्रमण्डल में बना रहेगा परन्तु हमें यह नहीं बताया गया है कि राष्ट्रमण्डल में बने रहकर हमें कौन-कौन से लाभ होने की सम्भावना है। हमें यह बताया गया है कि राष्ट्रमण्डल के प्रधानमंत्रियों के सम्मेलन में जो कुछ भी हुआ है, उससे भारत के लोग अथवा भारत सरकार किसी भी प्रकार प्रतिबद्ध नहीं हुई है अथवा इन पर कोई प्रतिबंध नहीं लगा है। महोदय, मैं अत्यन्त विनम्रता से यह निवेदन करूंगा कि मुझ जैसा एक सामान्य व्यक्ति

यह नहीं समझ पा रहा है कि किसी विशेष गुट में शामिल हो जाने के पश्चात् हम दायित्वों तथा प्रतिबन्धों से किस प्रकार मुक्त रह सकेंगे। यदि हम वास्तव में ही ऐसी उलझन से मुक्त हैं तो मेरी समझ में नहीं आता है कि हम किसी विशेष गुट में क्यों शामिल हों और न मेरी समझ में यह आता है कि इस गुट के अन्य सदस्य क्यों चाहते हैं कि आप उसमें शामिल हों। मेरी राय में किसी गुट की सदस्यता का अर्थ है उसमें शामिल होने वाले किसी नए देश के तथा उस गुट के अन्य सदस्यों के, जो कि नए देश को उसमें शामिल होने के लिए प्रेरित करते हैं, कुछ दायित्व होते हैं। यह दूसरी बात है कि उस गुट में शामिल होने की शर्तें आज हमारे समक्ष न रखी जाएं। यह तर्क दिया जा सकता है कि केवल दो वर्ष पूर्व ही हमें स्वतंत्रता मिली है और इसलिए अन्य देशों के आक्रमण के विरुद्ध इसे कायम रखना हमारे लिए सम्भव नहीं हो। यह भी हो सकता है कि हमारे नेताओं के दिमाग में यह बात हो कि यदि कोई युद्ध आरम्भ होता है, तो भारत ब्रिटेन की नौसेना के बिना अपनी रक्षा नहीं कर पाएगा। यदि वास्तव में इसी विचार ने हमें राष्ट्रमण्डल में शामिल होने के लिए प्रभावित किया है, तो मैं निवेदन करना चाहूंगा कि आज दुनिया का कोई भी देश अपनी सुरक्षा सुनिश्चित करने के लिए किसी भी अन्य देश पर निर्भर नहीं रह सकता है। क्या हम उन घटनाओं को भूल गए हैं जो कि पिछले युद्ध में घटीं? ब्रिटेन की नौसेना सिंगापुर की सुरक्षा के लिए केवल दो ही युद्धपोत भेज सकी तथा इन दोनों में से किसी एक में भी विमानवाहक पोत नहीं था तथा सभी को मालूम है कि वे सिंगापुर की रक्षा नहीं कर सके। यह बात कि ब्रिटेन की नौसेना तथा ब्रिटेन की सरकार भविष्य में और अधिक मजबूत हो जाएगी तथा हमारी भूमि की रक्षा करने के लिए हमें अधिक सहायता दे सकेगी, मेरी राय में तथा मेरे सहयोगियों की राय में अत्यन्त सन्देहास्पद बात है।

इसके अलावा, भारत, पाकिस्तान तथा लंका को छोड़कर राष्ट्रमण्डल के सभी सदस्य देश उस गुट के सदस्य हैं जो कि आंग्ल-अमरीकी गुट के नाम से जाना जाता है। अत: हमारे लिए यह समझना बहुत कठिन नहीं होगा कि भारत को राष्ट्रमण्डल की पूंछ के साथ बांधने का कोई और अर्थ नहीं हो सकता, सिवाय इसके कि यह आंग्ल-अमरीकी गुट में शामिल हो।

यह कहा गया है कि भारत को इंग्लैंड तथा अमरीका के साथ रहकर अनेक लाभ हो सकते हैं। उसे वित्तीय सहायता मिल सकती है। उसे अपने औद्योगीकरण को बढ़ावा

[श्री दामोदर स्वरूप सेठ]

देने के लिए सहायता मिल सकती है। यह भी कहा जा सकता है कि अमरीका जैसा एक शक्तिशाली देश अगले युद्ध में भारत को पर्याप्त सहायता दे सकता है और देगा। महोदय, फिलहाल मैं इस बात को स्वीकार करता हूं कि अमरीका हमें वह सहायता देगा जो कि हम मांगेगे। मैं मानता हूं कि शान्ति के समय अमरीकी सहायता भारत के लिए अत्यन्त लाभकारी होगी। परन्तु मेरा विचार है कि युद्ध के समय अमरीकी सहायता पर निर्भर करना हमारे लिए एक प्रकार से आत्मघाती होगा। जिस प्रकार चीन को अमरीकी सहायता दी गई है, वह हमारे लिए एक सबक है। जैसे ही अमरीकी सरकार ने यह देखा कि चियांगकाई शेक के नेतृत्व वाली सरकार की ताकत गिर रही है तो उसने उस सरकार को साम्यवादियों की दया पर छोड़ दिया। मैं यह भी मान सकता हूं कि युद्ध के समय अमरीका भारत को शस्त्र तथा अन्य वस्तुएं देने का भरसक प्रयत्न करेगा, परन्तु महोदय, हमें यह नहीं भूलना चाहिए कि एक ओर भारत तथा दूसरी ओर अमरीका तथा इंग्लैंड के बीच उमड़ते हुए महासागर हैं। ऐसे संकट के समय में भारत तक सहायता पहुंचना कोई आसान बात नहीं होगी। समुद्रों में पनडुब्बियां चल रही होंगी तथा आकाश से बम और परमाणु बम बरस रहे होंगे। अत: भले ही अमरीका हमें सहायता पहुंचाने के लिए अपनी ओर से ईमानदारी से भी भरसक प्रयत्न करे, इस पर सन्देह किया जा सकता है कि क्या वह सहायता हम तक पहुंच भी पायेगी या नहीं और फिर जैसाकि मैंने कहा है कि एक बहुत बड़ा फासला इन देशों से हमको अलग करता है, हम तक सहायता पहुंचने में काफी समय लग जाएगा। परन्तु महोदय, यदि हम वर्तमान परिस्थितियों पर ध्यान दें तो हम यह पायेंगे कि हम साम्यवादी शक्तियों तथा उनके समर्थकों से घिरे हुए हैं। हम देखते हैं कि रूस, पाकिस्तान की सीमा पर है तथा वह कश्मीर की सीमा पर भी है। चीनी साम्यवादी दिन-प्रतिदिन अधिक बलवान होते चले जा रहे हैं। हम इससे अनभिज्ञ नहीं हैं कि साम्यवादी आज मलाया में क्या कर रहे हैं तथा हमें यह भी ज्ञात है कि बर्मा भी साम्यवादी खतरे से मुक्त नहीं है। मेरे विचार में हममें से कोई भी इस बात की सम्भावना को पसन्द नहीं करेगा कि भविष्य में किसी दिन युद्ध आरम्भ हो जाने की स्थिति में रूसी सैनिक एक सप्ताह के भीतर भारतीय सीमाओं में प्रवेश कर जाएं और हम आंग्ल-अमरीकी गुट में शामिल होने के नाते अमरीकी सहायता की प्रतीक्षा में बैठे रहें। तब हम क्यों अपने आप को एक ऐसी स्थिति में डालें जिसके परिणामस्वरूप कि रूसी गुट यह सोचे कि हम उसके विरुद्ध खड़े हो रहे हैं? यह हमारे लोगों का दुर्भाग्य है अथवा दूसरे शब्दों में मैं यह कहना चाहूंगा कि हमारी विदेश नीति ऐसी रही है जिससे

कि मेरे मन में आशंकाएं पैदा हुई हैं। आज भी ऐसे हालात मौजूद हैं जिसमें कि रूस को हमारे इरादों पर सन्देह होता है और वह यह समझता है कि हम उस गुट के मित्र हैं जो कि उसके विरुद्ध है। यदि मैं गलती नहीं कर रहा हूं तो शायद यही वह कारण है जिससे कि हमारे राजदूत को, जो कि रूस में लगभग डेढ़ वर्ष रहे, रूस की सरकार के सर्वोच्च पद पर आसीन अतिविशिष्ट व्यक्ति मिस्टर स्टालिन के साथ भेंट का अवसर नहीं दिया गया। अब जबकि हमने स्वयं को राष्ट्रमण्डल के साथ सम्बद्ध कर लिया है, यह कहा जा सकता है कि हमने खुलेआम घोषणा कर दी है कि हम आंग्ल-अमरीकी गुट में शामिल हो गए हैं। आने वाले खतरे की हम कुछ सीमा तक कल्पना कर सकते हैं।

अध्यक्ष महोदय, इसके अलावा, यदि हम उन देशों को छोड़ दें जिनका कि मैंने अभी-अभी उल्लेख किया है, अर्थात् लंका और पाकिस्तान, तो राष्ट्रमंडल के साथ हमारा क्या सम्बन्ध रह जाता है? संस्कृति, सभ्यता, भाषा, वर्ण तथा जाति की दृष्टि से भी हमारा उनके साथ कोई सरोकार नहीं है। इसके बावजूद भी राष्ट्रमंडल के सदस्य हमारे राष्ट्रमंडल में शामिल होने की इच्छा रखते हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि दाल में कुछ काला है। हमारे प्रधानमंत्री ने भले ही हमें प्रधानमंत्रियों के सम्मेलन का ब्यौरा स्पष्ट रूप से न बताया हो, परन्तु दक्षिण अफ्रीका के प्रधानमंत्री ने स्पष्टतया कहा था कि उन्हें भारत को राष्ट्र-मण्डल में बनाए रखने की आवश्यकता है और यह कि यदि भारत उसमें नहीं बना रहा तो इससे राष्ट्रमण्डल को क्षति पहुंच सकती है। उन्होंने आगे यह भी कहा कि यह उन सबके लिए हानिकारक होता है और यही कारण है कि उन सब ने भारत की सदस्यता जारी रखने का प्रयत्न किया और अब वे सब भारत के राष्ट्रमण्डल में बने रहने पर प्रसन्न हैं।

अध्यक्ष महोदय, यह कोई छिपी हुई बात नहीं है कि चीन में जो कुछ भी हो रहा है, वह दोतरफा मामला है। एक ओर साम्यवादी शक्ति सारे चीन को अपने प्राधिकार के अन्तर्गत लाना चाहती है तथा दूसरी ओर अमरीका राष्ट्रवादी चीन को सहायता देकर चीन को अपने प्रभाव के अन्तर्गत लाना चाहता है। जब अमरीका ने देखा कि राष्ट्रवादी चीन उसके हाथ से निकल रहा है, तो मेरे विचार में उसने भारत को राष्ट्रमण्डल के जरिए अपने गुट में लाने की आवश्यकता अनुभव की। इसका कारण यह है कि एशिया में भारत की स्थिति सामाजिक दृष्टि से महत्वपूर्ण है। अध्यक्ष महोदय, हमें इस बात को तथा हर प्रकार के आसन्न खतरे को भी ध्यान में रखना चाहिये।

[श्री दामोदर स्वरूप सेठ]

जैसा कि मैंने अभी कहा है क्या राष्ट्रमण्डल के अन्य देशों के साथ हमारे ऐसे सम्बन्ध हैं, जो कि हमें उनके साथ रहने को मजबूर करें, विशेषकर जब हम देखते हैं कि दक्षिण अफ्रीका में हमारे भाइयों के साथ बहुत दुर्व्यवहार किया जा रहा है? हम अभी उन घटनाओं को नहीं भूले हैं जो कि हाल ही में डर्बन में घटी हैं। आस्ट्रेलिया अभी भी श्वेत आस्ट्रेलियाई नीति पर चल रहा है।

हमारे भाइयों ने जो भूमि अपने कठिन परिश्रम से सुधारकर कृषि योग्य बनाई, अर्थात दक्षिण अफ्रीका की बंजर भूमि, आज वहां उस परिश्रम का उन्हें यह बदला दिया जा रहा है कि उन्हें होटलों, बसों, ट्रेनों आदि में श्वेत लोगों के साथ बैठने की अनुमति नहीं है। इन सबका कोई कारण नहीं है तथा अपनी राष्ट्रीय गरिमा कायम रखते हुए तथा राष्ट्रमण्डल में शामिल रहते हुए हमारे लिए यह असहनीय है कि हमारे भाइयों के साथ ऐसा व्यवहार किया जाए। हमारे लिए यह भी असहनीय है कि हम राष्ट्रमण्डल में ऐसे लोगों से सम्बन्ध रखें जो कि हमारे लोगों के साथ कुत्तों से भी अधिक बुरा व्यवहार करते हैं। ब्रिटेन की सरकार भले ही स्वयं को समाजवादी सरकार कहती हो, परन्तु इस बात से इन्कार नहीं किया जा सकता कि वह समाजवादी सरकार किसी भी प्रकार एक साम्राज्यवादी सरकार से भिन्न नहीं है। नि:संदेह, ब्रिटेन की सरकार भारत छोड़कर चली गई है परन्तु आज भी ब्रिटेन द्वारा पन्द्रह से बीस देशों का शोषण किया जा रहा है। अध्यक्ष महोदय, गत पन्द्रह से बीस वर्षों से हम साम्राज्यवाद का विरोध करते आ रहे हैं, हमने इसके विरोध में आवाज उठाई है तथा हमने साम्राज्यवाद को समाप्त करने की, उन लोगों की सहायता करने की, जोकि साम्राज्यवाद के तले आर्त्तनाद कर रहे हैं, शपथ खाई है। तब हम स्वयं को ब्रिटिश राष्ट्रमण्डल के, जिसका कि एक सदस्य ब्रिटेन भी हो, साथ कैसे बांध सकते हैं? हम दुनिया से यह कैसे कह सकते हैं कि हम साम्राज्यवाद के विरोधी हैं और यह कि हम उन सभी देशों की रक्षा करेंगे जिनका कि ब्रिटिश साम्राज्यवाद द्वारा शोषण किया जा रहा है?

अध्यक्ष महोदय, ये सभी बातें ऐसी हैं जिनकी ओर मेरे विचार में हमें गम्भीरतापूर्वक ध्यान देना होगा। यदि सदन इसको समझने में तथा इन खतरों को महसूस करने में समर्थ है, तो इसे प्रधानमंत्री द्वारा प्रस्तुत प्रस्ताव का कभी भी अनुसमर्थन नहीं करना चाहिए, अपितु इसे इसके विपरीत एक समादेश देना चाहिए कि इस संविधान को अंगीकृत किए जाने

के पश्चात् भारत का विश्व में वही दर्जा होगा जो कि एक स्वतंत्र गणराज्य का होता है, अर्थात् भारत का ब्रिटिश राष्ट्रमण्डल के साथ कोई सरोकार नहीं रहेगा।

अध्यक्ष महोदय, मैं जानता हूं कि वर्तमान प्रसंग में मेरे कथन की कोई सुनवाई नहीं होगी। परन्तु मुझे खेद के साथ यह कहना पड़ रहा है कि भारत की स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् हमारे नेताओं के—उन नेताओं के जो कि कल तक इन्कलाब की बात करते रहे हैं—दृष्टिकोण में परिवर्तन आ चुका है। क्रांति की प्रत्येक बात इस समय उन्हें प्रतिक्रियावादी प्रतीत होती है तथा अपनी सभी प्रतिक्रियावादी कार्यवाहियों को वे प्रगतिवादी कार्यवाहियां समझते हैं। इस बात पर गम्भीरता से विचार किए जाने की आवश्यकता है क्योंकि इसके कारण हमारा भविष्य काफी अन्धकारमय प्रतीत होता है। आप मुझे क्षमा करेंगे यदि मैं यह कहूं कि अभी हाल ही में प्रधानमंत्री ने उस पार्टी के बारे में, जिसका सदस्य होने का मुझे गर्व है, कहा था कि यह पार्टी एक प्रतिक्रियावादी पार्टी है, जिसके चारों ओर अभी भी पुरानी बातों की दुर्गन्ध है और इसलिए वह राष्ट्रमण्डल के डद्यान की सुगन्ध अनुभव करने में असमर्थ है। परन्तु मैं यह कहना चाहूंगा कि राष्ट्रमण्डल का विचार कोई नया विचार नहीं है। इस विचार की कल्पना एटली अथवा हमारे प्रधानमंत्री द्वारा नहीं की गई है। हमारे प्रधानमंत्री यह भूले नहीं होंगे कि जुलाई, 1944 में ब्रिटेन के तत्कालीन प्रधानमंत्री मि. चर्चिल ने साम्राज्य के यूनिटों के बारे में बोलते हुए राष्ट्रमण्डल का एक निश्चित चित्र खींचा था, जो कि उस चित्र से भिन्न नहीं था जो कि आज उभर कर सामने आया है। महोदय, हो सकता है कि जो दृष्टिकोण हमारे प्रधानमंत्री ने सोशलिस्ट पार्टी के बारे में व्यक्त किया है वह उनकी राय में सही हो, परन्तु जो बात मैं कह रहा हूं वह यह है कि पुरानी बातों को अवज्ञा करने से हमारा अभिप्राय यह नहीं है कि हम अपने पुराने विश्वासों को तिलांजलि दे दें, कि हम अपने सिद्धांतों को भुला दें। सिद्धांत सदैव ही पुराने होते हैं, विश्वास सदैव ही पुराने होते हैं, परन्तु उनको तिलांजली देना, सिद्धांतों या विश्वासों की परवाह किए बिना परिवर्तनशील दुनिया के बहाव में बह जाना एक जीवन्त राष्ट्र को शोभा नहीं देता। ऐसा मार्ग उन देशों को शोभा देता है जिनके कि कोई सिद्धान्त नहीं हैं, परन्तु यह हमारे लिये शोभनीय नहीं है। महोदय, इसलिए मैं अपनी बात इस सदन को इस अपील के साथ समाप्त करना चाहूंगा कि वह इस प्रस्ताव पर समय की आवश्यकता के अनुसार निर्णय लें।

***अध्यक्ष:** कृपया अब रुक जाएं, इस समय एक बजने में पांच मिनट बाकी हैं। अत: हमें रुकना होगा, परन्तु सभा के स्थगित होने के पूर्व मुझे आपको एक दु:खद समाचार देना है जो मुझे अभी-अभी प्राप्त हुआ है। हमारे एक सदस्य श्री एफ. कोठवाला कल बम्बई से यात्रा कर रहे थे तथा इस बैठक में शामिल होने के लिए दिल्ली आ रहे थे। रास्ते में उन्हें दिल का दौरा पड़ा तथा ट्रेन में ही उनका देहान्त हो गया। मैं चाहूंगा कि सदस्य उनकी स्मृति के प्रति सम्मान व्यक्त करने के लिए अपने-अपने स्थान पर खड़े हो जायें।

(*सभी सदस्य मौन खड़े रहे*)

***अध्यक्ष:** मैं समझता हूं कि सभा सदस्य के परिवारजनों को अपनी सहानुभूति प्रेषित करने की अनुमति मुझे देगी।

अब हमें कल की बैठक के लिए समय निर्धारित करना है। मैंने दिन के आरम्भ में कहा था कि दो सुझाव दिए गए हैं—सुबह का सत्र तथा मध्याह्न पश्चात् का सत्र। मुझे बताया गया है कि अधिकांश सदस्य प्रात: आठ से बारह बजे तक के सत्र के पक्ष में हैं। क्या यही सही है?

***अनेक माननीय सदस्य:** हां।

***अध्यक्ष:** यदि ऐसा है तो कल हम प्रात: आठ बजे से बैठक करेंगे। सभा कल प्रात: आठ बजे तक के लिए स्थगित होती है।

इसके पश्चात् सभा 17 मई, 1949 के प्रात:
आठ बजे तक के लिए स्थगित हुई।